UTKAL UNIVERSITY
NAAC ACCREDITED A+

MASTER OF ARTS
IN HINDI

SEMESTER-II

आधुनिक काव्य

CREDIT: 4

Paper - 2.3
BLOCK: 1,2,3 & 4

AUTHOR

Dr. Shankarlal Purohit

ଦୂର ଓ ଅନ୍‌ଲାଇନ ଶିକ୍ଷା କେନ୍ଦ୍ର, ଉତ୍କଳ ବିଶ୍ୱବିଦ୍ୟାଳୟ
CENTRE FOR DISTANCE AND ONLINE EDUCATION
UTKAL UNIVERSITY
C.D.O.E

UTKAL UNIVERSITY
NAAC ACCREDITED A+
CDOE

ABOUT THE UNIVERSITY

Founded in 1943, Utkal University is the 17th University of the country and the first of Orissa. It is the result of the efforts of Pandit Nilakantha Dash, Maharaja Krushna Chandra Gajapati, Pandit Godavarish Mishra and many others who envisioned a progressive education system for modern Odisha.

The University started functioning on 27 November 1943, at Ravenshaw College, Cuttack. It originated as an affiliating and examining body but shifted to its present campus spread over 400 acres of land at Vanivihar in Bhubaneswar, in 1962.

A number of Postgraduate Departments and other centres were established in the University campus. There are presently more than two hundred general affiliated colleges under the University. It has eleven autonomous colleges under its jurisdiction, twenty-eight constituent postgraduate departments, 2 constituent law colleges and a Directorate of Distance & Continuing Education. It boasts of a centre for Population Studies, a School of Women's Studies, an Academic Staff College, a pre-school and a high school. The University also offers a number of self-financing courses.

NAAC accredited in its 3rd cycle with A+ status in 2023. It is a member of the Indian Association of Universities and the Commonwealth Association of Universities.

CENTRE FOR DISTANCE & ONLINE EDUCATION
UTKAL UNIVERSITY: VANI VIHAR
BHUBANESWAR:-751007

From the Director's Desk

The Centre for Distance and Online Education, originally established as the University Evening College way back in 1962 has travelled a long way in the last 52 years. **'EDUCATION FOR ALL'** is our motto. Increasingly the Open and Distance Learning institutions are aspiring to provide education for anyone, anytime and anywhere. CDOE, Utkal University has been constantly striving to rise up to the challenges of Open Distance Learning system. Nearly one lakh students have passed through the portals of this great temple of learning. We may not have numerous great tales of outstanding academic achievements but we have great tales of success in life, of recovering lost opportunities, tremendous satisfaction in life, turning points in career and those who feel that without us they would not be where they are today. There are also flashes when our students figure in best ten in their honours subjects. Our students must be free from despair and negative attitude. They must be enthusiastic, full of energy and confident of their future. To meet the needs of quality enhancement and to address the quality concerns of our stake holders over the years, we are switching over to self instructional material printed courseware. We are sure that students would go beyond the course ware provided by us. We are aware that most of you are working and have also family responsibility. Please remember that only a busy person has time for everything and a lazy person has none. We are sure, that you will be able to chalk out a well planned programme to study the courseware. By choosing to pursue a course in distance mode, you have made a commitment for self improvement and acquiring higher educational qualification. You should rise up to your commitment. Every student must go beyond the standard books and self instructional course material. You should read number of books and use ICT learning resources like the internet, television and radio programmes etc. As only limited number of classes will be held, a student should come to the personal contact programme well prepared. The PCP should be used for clarification of doubt and counseling. This can only happen if you read the course material before PCP. You can always mail your feedback on the course ware to us. It is very important that one should discuss the contents of the course materials with other fellow learners.

We wish you happy reading.

DIRECTOR

Centre for Distance and Online Education, Utkal University, Bhubaneswar.

Program Name: Master of Arts in Hindi — Program Code: 010308

Course Name: Aadhunik Kavya — Course Code: HIN 2.3

Semester: II — Credit: 4 — Block No. 1 to 4 — Unit No. 1 to 16

EXPERT COMMITTEE: -

Dr. Smarapriya Mishra
Retd. Prof. from Ravenshaw University

Dr. Ravindranath Mishra
Retd. Prof. & former HOD,
Visva Bharati,Santiniketan

Dr. Snehalata Das
Reader in Hindi
Rama Devi Women's University , Bhubaneswar

Dr. Sudhansu Ku. Nayak
Retd. Reader, Berhampur University

COURSE WRITER:

Dr. Shankarlal Purohit
Retd. Reader in Hindi
Utkal University

COURSE EDITORS:

Dr. Manju Modi
Retd. Reader in Hindi
S.B. Women's College, Cuttack

Dr. Laxmidhar Dash
Retd. Principal, HTTI, Cuttack

Dr. Pragyan Paramita
Faculty in Hindi, CDOE, Utkal University

PUBLISHED BY

Center for Distance and online Education(CDOE), Utkal University
Bhubaneswar-751007

M.A. (Hindi) Semester - II

PAPER - 7
आधुनिक काव्य

Block No	Block	Unit No.	Unit
1	जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	1	छायावादी काव्य का परिचय
		2	श्रद्धा एवं लज्जा सर्ग में काव्य सौंदर्य
		3	'राम की शक्ति पूजा' में नवचेतना
		4	'तुलसीदास' में निराला की काव्य दृष्टि
2	रामधारी सिंह दिनकर की 'उर्वशी'	5	दिनकर का परिचय
		6	दिनकर की साहित्य साधना
		7	उर्वशी काव्य की विशेषता
		8	उर्वशी के तीसरे सर्ग की समीक्षा
3	सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय'	9	प्रयोगवादी कविता की विशेषता
		10	अज्ञेय का साहित्य संसार
		11	'असाध्यवीणा' काव्य का कथासार
		12	'बावरा अहेरी' कविता का मुख्य उद्देश्य
4	मुक्तिबोध, धूमिल	13	प्रगतिशील साहित्य की विशेषता
		14	'अंधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य
		15	धूमिल के काव्य में व्यक्त साधारण वर्ग
		16	'मोचीराम' कविता में मार्क्सवाद

पत्र - VII

एम.ए. हिन्दी के द्वितीय सेमेस्टर में VII पत्र में आपका स्वागत है । इसका शीर्षक है 'आधुनिक काव्य' । वैसे पूरे एम.ए. हिंदी में कविता तीन पत्रों में पढ़ी जानी है । पहले तो पांचवें पत्र में प्राचीन हिंदी काव्य(विद्यापति, चंद खुसरो और चर्या गीति) का अध्ययन करना है । परंतु छठे पत्र में मध्यकालीन काव्य (कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, बिहारी तथा घनानन्द) का अध्ययन रखा गया है । तदन्तर सातवें पत्र में आधुनिक काव्य (प्रसाद, निराला, दिनकर, अज्ञेय, मुक्तिबोध तथा धूमिल) का अध्ययन करना है । पांचवें एवं छठे पत्र में हिंदी काव्य की भूमिका और विकास पर सम्यक दृष्टि प्राप्त करने के बाद अब खड़ी बोली हिंदी के मैदान में पहुँच चुके हैं । वैसे तो आधुनिक हिंदी काव्य भारतेन्दु से शुरू होकर हरिऔध, मैथिलीशरण होते हुए काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था । मगर इसका निखरा रूप छायावादी युग में ही उपलब्ध होता है । आगे चलकर हिंदी कविता का और भी अधिक बौद्धिक, कलात्मक तथा सौन्दर्यात्मक विकास प्रगतिशील कविता तथा प्रयोगवादी कविता दोनों के मेल से बनता है । इस प्रकार आधुनिक, कविता को हमने तीन इकाइयों में देखा । यहाँ पर हम पहली युनिट में केवल छायावादी कविता पर चर्चा करेंगे ।

पहली इकाई के दो चरण हैं ; पहले में जयशंकर प्रसाद तथा दूसरे में सूर्यकांत प्पिाठी'निराला' । हालांकि छायावाद के चार प्रमुख स्तभों में सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा का नाम भी सम्मिलित है । परंतु पाठ्यक्रम में इन्हें शामिल करना संभव नहीं हुआ । अत: छायावाद के केवल दो प्रमुख स्तंभ प्रसाद और निराला पर ही विशद चर्चा होगी ।

इस चर्चा में हमारा क्रम रहेगा -

सर्वप्रथम छायावाद का परिचय, छायावादी युग और वैशिष्ट्य दिया जायेगा । तीसरे अंश में प्रसाद का कवि परिचय और कृतित्व के साथ उनका दृष्टिकोण हमारी चर्चा का बिन्दु रहेगा । तदनन्तर कामायनी का व्यापक परिचय तथा महत्व स्पष्ट करेंगे । तब मूल श्रद्धा और लज्जा सर्ग पर क्रमान्वय में विश्लेषण देंगे । श्रद्धा व लज्जा दोनों सर्गों में प्रसाद के काव्य शिल्प पर काव्यरूप, छंद, लय, संगीत आदि की दृष्टि से विचार होगा । भाषा संबंधी वैशिष्ट्य पर अलग से प्रकाश डाला जायेगा । इस प्रकार महाकाव्य के व्यापक परिप्रेक्ष्य में दोनों सर्गों पर विचार किया जायेगा ।

पाठ पर आधारित यह अध्ययन कविता की व्यापक समय की दृष्टि से कामायनी के वृहत्तर रूप को बीच-बीच में रेखांकित करना हमारा लक्ष्य होगा ।

कामायनी के रूपक का उल्लेख करते हुए समकालीन संदर्भ में उसकी व्याख्या की जायेगी । इस प्रकार श्रद्धा और लज्जा सर्ग का तात्कालिक रहस्य भी स्पष्ट किया जा सकेगा ।

***

इकाई - I (प्रसाद - कामायनी : श्रद्धा सर्ग, लज्जा सर्ग ;
निराला - अपरा : राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास)

विषय सूची

1.1 छायावादी काव्य

1.1.1 छायावादी काव्य

1.1.2 छायावाद

1.1.3 युगीन परिस्थितियाँ

1.1.4 सांस्कृतिक जागरण

1.1.5 जयशंकर प्रसाद का परिचय

1.1.6 कामायनी की कथा

1.1.7 श्रद्धा

1.1.8 कामायनी का काव्य सौन्दर्य

1.1.9 छंद प्रयोग

1.1.10 शब्दों का अर्थ विवेचन

1.1.11 अभ्यास प्रश्न

1.2. लज्जा सर्ग

1.2.1. लज्जा कथानक

1.2.2 काव्य सौन्दर्य

1.2.3 अभ्यास प्रश्न

1.3.सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

1.3.1 निराला का परिचय

1.3.2 निराला काव्य की वैचारिक दृष्टि

1.3.3 निराला का प्रेरणा स्रोत

1.3.4 निराला काव्य में नवचेतना

1.3.5 'राम की शक्ति पूजा' का कथानक

1.3.6 प्रतीकात्मकता

1.3.7 काव्य रूप

1.3.8 सोन्दर्य -विधान

1.3.9 कुछ शब्दों के अर्थ संकेत

1.3.10 अभ्यास प्रश्न

1.4. तुलसीदास

1.4.1 कथानक

1.4.2 काव्य दृष्टि

1.4.3 कुछ कठिन शब्द

1.4.4 अभ्यास प्रश्न

1.5 उपयोगी ग्रंथ

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- आधुनिक हिंदी काव्य के अंतर्गत छायावादी साहित्य को समझ सकेंगे ।
- छायावादी साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे ।
- जयशंकर प्रसाद के साहित्य से परिचित हो सकेंगे ।
- निराला साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे ।

छायावादी काव्य

1.1. **छायावादी काव्य :**

आधुनिक हिंदी काव्य तो अंग्रेजी राज के साथ-साथ जन्म लेकर पनपने लगा था । परंतु प्रारंभ में यह इतिवृत्तों से जुड़ा रहा । पारंपरिक नीति की प्रबलता रही । वर्णनात्मक अभिव्यंजना इसमें प्रमुख रही । प्रेम हो या श्रृंगार, वह स्थूल और मांसलतापूर्ण वर्णन युक्त हुआ करता । सांप्रदायिक रुढ़ियों से ग्रस्त धार्मिकता प्रबल थी ।

परंतु युग बदल रहा था । मूल्यों पर, जो समाज में प्रचलित और प्रवीण थे, उनको लेकर प्रश्न उठने लगे । नयी वैज्ञानिक प्रगति से नयी मान्यताएँ स्थापित होने लगी । परंपरागत और पुरातन को विज्ञान की कसौटी पर परख कर उनका पुनर्मूल्यांकन होने लगा । अत: काव्य के मानों में भी परिवर्तन जरूरी हो उठा ।

1.1.1. **छायावाद :**

जब छायावाद काव्यरूप में प्रतिष्ठित होने लगा, तरह-तरह की चर्चाएँ बढ़ने लगी । डॉ. रामकुमार वर्मा का कहना है -‘‘ छायावाद जीवात्मा की उस अंतर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता ।’’ इस प्रकार इसे अध्यात्मवाद से जोड़ने लगे । इसमें रहस्यात्मक भावों को देखकर कुछ कवियों को रहस्यवादी कहने लगे । ऐसे धुंध भरे वातावरण में नन्ददुलारे बाजपेई ने उस पर संतुलित मंतव्य प्रदान कर कहा -‘‘ नई छायावादी काव्यधारा का भी एक आध्यात्मिक पक्ष है । परंतु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है । उसे हम बीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक और भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं । इसमें भारतीय आध्यात्मिक दर्शन की नवप्रतिष्ठा का प्रयत्न है । छायावाद मानव जीवन, सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न रूप मानता है ।*

दूसरी तरफ के आलोचक कहते हैं छायावाद में अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीय जनता का संघर्ष,

---

* आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ.-319

स्वाधीनता के लिए जनता का आंदोलन सशक्त रूप में उभरता मिलता है । उस समय की राजनैतिक चेतना इस विचार को समर्थन देती है । अत: हमें मानना होगा कि छायावाद में आध्यात्मिक संकेत हैं, पर यह आध्यात्मिक या धार्मिक कविता नहीं है । इसमें मानव जीवन का (ईश्वरीय लीला का नहीं) यथार्थ चित्र मिलता है । मानव की आशा-निराशा, जीवन संघर्ष, शृंगार भावना के जीवंत चित्र हैं । प्रकृति के सौन्दर्य का निरूपण कर भी मानवीय सूक्ष्म और अतीन्द्रिय चेतना की सुन्दर झांकी चित्रित होती है ।

1.1.3. युगीन परिस्थितियाँ :

भारतीय उपमहादेश पर विदेशी शिकंजा पूरी तरह कसा जा चुका था । अंग्रेजी राज और देसी रजवाड़े - इस प्रकार यहाँ दो तरह का शासन चल रहा था । अंग्रेजों के बल पर देसी राजा भी अपनी मन मरजी का शासन कर रहे थे । अत: जनता राजनैतिक दृष्टि दे त्राहि-त्राहि कर उठी । ऐसे समय में 1919 में गांधीजी भारतीय राजनैतिक मंच पर उतरे । जनता को एक नया संदेश मिला । वह एक नूतन प्रेरणा में भर उठी ।

इधर वैज्ञानिक चेतना में स्वाभिमानी स्वर जगदीश चन्द्र बसु ने भर दिया । साहित्य में नया गौरवमय अध्याय रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रस्तुत कर दिया था । अत: स्वतंत्रता की चेतना एक यथार्थ बन गई । सारे देश में यह भावना क्रमश: जागने लगी कि हम भारतीय एक महान परंपरा के उत्तराधिकारी हैं ।

वैश्विक परिदृश्य : 1919 - 1936 का काल दो विश्व युद्धों के बीच की अवधि है । यूरोप एक ओर युद्ध की विभीषिका से उबर रहा था । दूसरी और विज्ञान के नये आविष्कार मानवता को अभिभूत भी कर रहे थे । चिंतन के क्षेत्र में समाज विप्लव के बीच समन्वय कर मानव को आश्वासन दे रहा था । यूरोप एवं अमेरिका का नये आर्थिक एजेंडे एवं राजनैतिक गतिविधियों के कारण विकास तेजी से हो रहा था । वैज्ञानिक आविष्कार मानव के लिए भौतिक सुख-सुविधा के भंडार खोल रहे थे । यूरोप की इस हवा का रूख भारत में बेचैनी पैदा कर रहा था । क्योंकि भारत उनके माल की मंडी थी । अर्थात् व्यापार का आधार, पूंजी का उत्स भारत था । रूस में मानवीय शोषण के विरुद्ध मार्क्स का स्वर इसमें एक और बल दे रहा था । क्रांति चेतना में संघर्ष का स्वर उग्र था । अत: भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में इस धारा ने विशेष भूमिका नहीं ली । परंतु रामकृष्ण-विवेकानन्द - अरविन्द की नव कल्पना, नवोन्मेषपूर्ण वाणी ग्राह्य थी । समूचा राष्ट्र एक नई लहर की प्रतीक्षा में था । अपनी धरा, अपने इतिहास और अपने विकास को लेकर जो काव्य चेतना समृद्ध हुई, वह हिंदी में छायावाद, बांग्ला में कल्लोल युग, ओड़िया में सबुज युग और भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इसी के समरूप में उभर रही थी ।

1.1.4. सांस्कृतिक जागरण :

आधुनिक युग के साथ एक राष्ट्र अपने अस्तित्व के प्रति, अतीत के प्रति और भविष्य के प्रति सचेतन होने लगा । यही था दयानन्द, रामकृष्ण और तमिल कवि सुब्रयण्यम भारती का भावमूल । हम अपने दार्शनिक - आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति सचेतन हो रहे थे । सारे राष्ट्र में ऐक्य के सूत्र तो स्पष्ट थे, पर सचेतन नहीं होने के कारण इधर किसी का ध्यान नहीं था । तिलक, गोखले, हरिनारायण, बंकिम(वंदेमातरम), गोपबंधु आदि ने सर्वाधिक महत्व इस सांस्कृतिक ऐक्य को दिया । बंगाल में रवीन्द्र ने नेतृत्व लिया । यह चेतना अपने को पहचानने, अपनी शक्ति के प्रति सचेतन होने के लिए बहुत महत्वपूर्ण थी । बाद में गांधीजी ने इसमें समाज संस्कार लाकर परिष्करण का जरूरी काम किया । गांधी के लिए आजादी का मुद्दा महत्वपूर्ण था । अत: देशभ्रमण कर उसका कार्यपथ निर्धारण किया । पर साहित्यकार का सपना कुछ भिन्न होता है । वह इस आंदोलन को समर्थन देते हुए भी राजनीति की बजाय सांस्कृतिक संस्कार में अधिक विश्वासी था । अत: सारे देश के साहित्य में यह सांस्कृतिक चेतना (अतीत के गौरवमय पन्ने, पात्र, परंपरा, मूल्य आदि) उस काव्य या साहित्य का पाथेय बन गई । हिंदी का छायावाद इस दृष्टि से सर्वाधिक सचेतन भावयुक्त दिखाई पड़ रहा है । पूरा छायावाद इस दृष्टि से निर्विवाद रूप में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही दंडायमान दिखाई पड़ता है ।

आगामी कामायनी और रामकी शक्ति पूजा के अध्ययन में यह दृष्टि और भी स्पष्ट होगी ।

यहाँ पहले अग्रणी प्रसादजी का परिचय दे रहे हैं -

1.1.5. जयशंकर प्रसाद का परिचय :

भारत की तीर्थ नगरी वाराणसी के गोवर्धन सराय मुहल्ले में जन्मे थे जयशंकर प्रसाद । उनके दादा शिवरतन साहू प्रसिद्ध सुरती-तंबाखू के व्यापारी थे । पूरे समाज में उनका आदर था । शिव के परम भक्त थे । उन्हीं की कृपा से जन्मे, ऐसे विश्वास के कारण नाम रखा जयशंकर प्रसाद । शुरू में पढ़ाई के लिए क्वींस कालेज में दाखिला लिया । सातवीं के बाद पढ़ाई घर पर हुई । घर में शिक्षक आकर पढ़ाने लगे । प्रसाद ने बहुत कम समय में अरबी, उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत सीख ली । लेकिन परिवारी जन एक के बाद एक बिछड़ते गए । पिता गए, माँ गई, बड़े भाई गए । इस प्रकार कम उम्र में उन्हें व्यापार सम्हालना पड़ा । कविता लिखना शुरू किया था । वह भी चलता रहा । कठिनाई और बढ़ी जब परिवार में कलह बढ़ा । मुकदमेबाजी शुरू हुई । व्यापार भी चौपट होता गया । प्रसाद ने सब धीरज के साथ सम्हाला । दुकानदारी देखी । वे कविता लिखते रहे । परिवार का दायित्व निभाया । सारा ऋण उतारने में वे बीमार पड़ गए । विश्राम के लिए पहाड़ी स्थल जाना जरूरी था, पर वे आराम नहीं कर पाये । बस अपनी महानतम कृति का मुद्रण देखने को बचे हुए थे । देवोत्थान एकादशी के पुण्य दिवस पर 1937 में

उनका देहावसान हो गया । बहुत छोटी उमर में प्रसादजी ने गहरी छाप छोड़ी थी । अपने परिवार और व्यवसाय दोनों की प्रतिष्ठा लौटाने में उन्हें अथक परिश्रम करना पड़ा । वे दोनों लौटे । पर इससे गहरे मानसिक दबाव के चलते स्वास्थ्य बिगड़ गया ।

प्रसादजी बचपन से ही कविता लिखने लगे थे । परंतु तब ब्रज भाषा का प्रयोग अधिक करते । बाद में जब महाबीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ी बोली हिंदी को काव्य भाषा के रूप को समृद्ध करने का आह्वान दिया, प्रसाद उसमें अग्रणी रहे । कानन कुसुम के बाद चित्राधार और प्रेम पथिक में परिवर्तन आया । 'लहर' में छायावाद की सशक्त रूप छवि मिलती है । आँसू और कामायनी दोनों ग्रंथों ने उनको छायावादी काव्य का सिरमौर बना दिया । भारतीय महाकाव्य परंपरा में आधुनिक रूप में 'कामायनी' अद्वितीय कृति है ।

हिंदी नाटक को फूहड़ और हलके -फुलके मनोरंजन के कीचड़ से उठा कर संस्कृति और इतिहास की उच्चतम मनोभूमि पर स्थापित करने हेतु श्रेष्ठ नाटक लिखे । इनमें एक घूंट, ध्रुवस्वामिनी, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त एवं अजातशत्रु सर्वाधिक उल्लेखनीय नाटक हैं । इनसे हिंदी का नाटक और मंच उभय सम्मानजनक स्थान पा कर आधुनिक नाटक की मर्यादा पाने में सफल रहा ।

प्रसाद एक श्रेष्ठ कथाकार भी थे । उन्होंने लगभग साठ-सत्तर कहानियाँ लिखी हैं जिन्हें आकाश दीप, इंद्रजाल, प्रतिध्वनि, छाया आदि संकलनों में संगृहीत किया गया है । प्रसाद का कथा साहित्य प्रेम के उच्चांग रूप, मानवीय करुणा और त्याग के उज्वल पक्ष से समन्वित कथानकों की सृष्टि है । इसमें उनके एक भिन्न स्वाद के उपन्यास कंकाल, तितली और इरावती हैं । कविता से हटकर कथानक में प्रसाद यथार्थ की धरती पर उतर आते हैं । जहाँ जीवन के वास्तववादी चित्रण की ओर मुड़े थे । परंतु उसके लिए जीवन में समय बहुत कम मिला था । फिर भी सशक्त शुरूआत कर गए ।

इसके अतिरिक्त प्रसादजी का गद्य भी काफी महत्व रखता है - कला, साहित्य एवं काव्य संबंधी मानदंडों पर अपने विचार इन निबंधों एवं टिप्पणियों में व्यक्त किया है । छायावाद की सशक्त व्याख्या और परिभाषा का द्वार इनसे खुलता है । वरना प्रसादजी बहुत अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले थे । वे काव्य सम्मेलनों, सभा-समितियों से प्राय: बच कर रहते । लेकिन खूब अध्ययनशील स्वभाव के थे । इतिहास के अंधेरे से वे भारतीय परंपरा के अनमोल हीरे निकाल पूरा जगत प्रकाशमान करने में सफल हुए थे । इतिहास के महत्वपूर्ण अंश से जाज्वल्यमान घटनाक्रम, पात्र एवं परिस्थितियाँ प्रस्तुत कर भारतीय जीवन में प्रेरणा भरने लगे थे ।

प्रसादजी की प्रारंभिक कविताएँ 'कानन कुसुम' में संकलित हैं । इसके बाद चित्राधार, प्रेम पथिक, झरना, लहर आदि कविता संकलन प्रकाशित हुए । प्रसादजी की गीत क्षमता का प्रकाश 'लहर' में होता है । 'झरना' संकलन में रहस्यवादी भावधारा का अंत:बाह्य रूप उजागर हुआ है । कवि

स्मृति में डूब कर प्रणय चेतना को साकार रूप देता है । इन भावों को 'आँसू' काव्य में चरम परिणति मिलती है । मिलन-विरह, शृंगार -सौन्दर्यादि प्रेम के विविध पक्षों को श्रेष्ठ अभिव्यक्ति मिली है । लेकिन प्रसाद की 'पेशोला की प्रतिध्वनि' जैसी ऐतिहासिक कविताओं में त्याग, वीरता, बलिदान और उद्‌बोधन के भाव भरे हैं । स्वाधीनता संग्राम का प्रारंभिक काल ऐसी कविताओं की प्रतीक्षा में था । इनमें जागरण का गहरा संकेत भरा था अत: प्रसाद काव्य समग्रत:महत्वपूर्ण हो जाता है ।

'कामायनी' भारतीय साहित्य में आधुनिक रूप का महत्वपूर्ण काव्य है । हिंदी में इसको छायावाद की महाकाव्य की नई परिभाषा में रची कृति कहा गया । प्रसादजी पारंपरिक मूल्यों का और भावों का विस्तार ही नहीं करते, उनका परिष्कार तथा संस्कार भी करते हैं ।

1.1.6. कामायनी की कथा :

'कामायनी' की कथा के संबंध में वे लिखते हैं - ''यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसलिए मनु, श्रद्धा, इड़ा आदि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष मस्तिष्क और हृदय पक्ष का संबंध क्रमश: श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है ।''

स्थूल रूप में कामायनी का प्रारंभ देव संस्कृति के विनाश से होता है । जल प्रलय हो चुकी है । अनायास मनु से श्रद्धा का मिलन होता है । दोनों मिल कर जीवन में फिर से सकारात्मक सोच की ओर बढ़ते हैं । परंतु मनु में जो भोगवादी प्रवृत्ति पनपती है, वह पालित पशु का वध करने में स्पष्ट है । श्रद्धा को गर्भावस्था में छोड़ कर मनु चल पड़ते हैं । सारस्वत प्रदेश में उनकी भेंट होती है इड़ा से । वहाँ उसके सहयोग से वे शासन चलाते हैं । परन्तु इड़ा पर जबरन काबू पाने का प्रयास करते हैं तो प्रजा भड़क जाती है, युद्ध छिड़ जाता है और मनु घायल हो गिर पड़ते हैं । इधर खोजती -खोजती श्रद्धा आकर उन्हें उठाती, चिकित्सा कर स्वस्थ करती है । इसके बाद इड़ा के पास अपने पुत्र मानव को छोड़ सब मानसरोवर की यात्रा पर निकल जाते हैं । कैलास में शिव का निवास है ।

महाकाव्य में इस प्रकार देखते हैं कि पारंपरिक कथाक्रम न होने पर भी प्रसाद ने कथा सूत्र अवश्य प्रदान किया है । इससे कामायनी पाठकों के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है ।

1.1.7. **श्रद्धा**

यह सर्ग श्रद्धा के समर्पण भाव पर आधारित है । मनु अपने में लीन थे । प्रात:कालीन वातावरण में वे अचानक नारी स्वर सुनते हैं । वह मनु के थके, निराश, हताश भाव को देख कर प्रश्न करती है कि

तुम दु:ख से दूर क्यों भाग रहे हो ? कामना से क्यों दूर हो रहे हो ? कामना ही सर्ग इच्छा का परिणाम है । विश्व का स्पन्दन इसीसे है । वह कोमल वाणी सुनकर मनु को उत्साह की तरंगों का अनुभव होता है लेकिन वे जीवन को निरुपाय कहते हैं । तब स्नेहिल शब्दों में आगन्तुक ने कहा - इसीमें अधीर क्यों हो गए ? केवल तप ही जीवन का सत्य नहीं । नवीनता एवं सृष्टि इसके रहस्य हैं । बासी फूलों से प्रकृति का श्रृंगार नहीं होता । प्रेरणा में भरे शब्दों में वह कहती है - विधाता मंगलमय शब्दों में आह्वान दे रही है कि शक्तिशाली बन विजयी होना है । तुम अमृत संतान हो । चेतना जगत में जो शक्ति के विद्युत कण बिखरे हैं - इनका समन्वय करो .... मानवता विजयी होगी । इस प्रकार श्रद्धा पहले ही उच्चार में मनु का निराश भाव काटने में विशिष्ट भूमिका निभाती है । अकर्मण्य मनु को कर्म प्रेरित कर कर्मठ बनाती है ।

कवि पहले उसके असीम सौन्दर्य का परिचय देते हैं । चर्माच्छाति गांधार देश के अनुरूप उस अनुपम बाला का वर्णन करते हैं । अब वह अपने परिचय में कहती है कि स्वच्छन्द प्रकृति की होने के कारण वह इधर-उधर घूमती रहती है । प्रकृति के सौन्दर्य का वह आनन्द लेती है । उसके सौन्दर्य रहस्य में मुग्ध हो उठी है । मानो हिमालय किसी आंतरिक पीड़ा में उभर कर ये सिकुड़न दिख रही हैं उसीकी खोज में बढ़ चली । वह ललित कलाएँ सीखने में रुचि रखती है । मनु उसकी वाणी सुनकर उस विश्व रहस्य की बात कहते हैं । यह जीवन व्यर्थ बिताना पड़ रहा है । अब तक कोई लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ ।

यह जीवन रहस्य बना हुआ है । उलझ कर रह गया ! मैं स्वयं क्या हूँ, चारों ओर शून्यता व्यापी है । वे जीवन को निराशा का पर्याय मानते हैं । ऐसी घड़ी में मनु को वे प्रेरित करती हैं । सृष्टि के विकास के लिए संकल्प लेने को कहती हैं । मनु से ही मानवीय सभ्यता का विस्तार संभव है । वह उसे निर्भय हो कर सृष्टि के विकास में सहयोग करने कहती है । जीवन की समूची शक्ति लगाकर मानव सभ्यता को विजयी बनाओ । इस प्रकार श्रद्धा मनुष्य को मंगलमय कल्याण के लिए प्रेरित कर रही है । पर मनु स्वयं को असहाय, निस्सार, निरुपाय कहता है । श्रद्धा इस जड़ता, निराशा को तोड़ने के लिए प्रेरित करती है । स्वयं भी इसमें सहायता को प्रस्तुत है । परंतु मनु का जीवन रहस्यमय बना है । यही कामरूपा श्रद्धा आगे चल कर मनु के जीवन का वरदान बनकर आती है । वह जीवन में आनन्द लाने का श्रेय प्राप्त है । श्रद्धा के अभाव में मनु का जीवन शून्य बन जाता है । श्रद्धा-मनु मिल कर आनन्द तक जा सकते हैं । श्रद्धा शक्ति के बिखरे विद्युत कणों में समन्वय का संदेश देती है । मनुष्य अमृत संतान है । उसे डरना नहीं चाहिए । समन्वय से ही मानवता विजयिनी बनती है । यहाँ वह प्रेरणा दे रही है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रद्धा, जो कि कामायनी ही है । आदि से अंत तक वह मनु का पथ पदर्शन करती है । बिना उसके मनु का कोई अस्तित्व नहीं रहता । वे पति -पत्नी हैं । उसके कई रूप मिलते हैं । परंतु प्रसाद ने उसका कामायनी रूप ग्रहण किया है । इस काव्य में वह सर्वोत्तम चरित्र है । इस काव्य की सारी कल्पना घूम फिर कर उसी के पास आती है । उसमें नारी सुलभ असीम सौन्दर्य है ।

वह सुकुमारी ही नहीं, वात्सल्य की मंगलकारी भावना से भरी है । वह सचेतन शक्ति है । उसी के सहारे मनु आनन्दवाद तक जा सकता है । इस प्रकार प्रसाद ने श्रद्धा को सर्वोत्तम नारी के रूप में चित्रित किया है ।

1.1.8. कामायनी का काव्य वैभव :

'कामायनी में श्रद्धा, मनु, इड़ा, मानव आदि बहुत थोड़े से पात्र रखे हैं । 15 सर्गों में विस्तृत इस काव्य में कवि ने सारी कथा इन्हीं से रची है । चरित्र चित्रण के लिए कवि उनमें वैयक्तिक भावनाओं का नियोजन कर केंद्रीय भाव तक पहुँचते हैं । सभी चरित्र अंत में एक स्थल पर पहुँचते हैं । वहाँ आनन्द प्राप्त करते हैं । अंत में एक ओर बुद्धिजीवी इड़ा अपने बुद्धिवाद को छोड़ती है । इधर श्रद्धा ने ज्ञान-कर्म का समन्वय कर मनु को मुख्य बनाया है । उनका मानसिक द्वंद समाप्त होता है । इड़ा भी मानव को राष्ट्रनीति की शिक्षा देकर सारस्वत नगरवासियों को मार्ग दिखाती है । मानसरोवर में सामूहिक आनन्द के सब भागी बनते हैं । मनु भी आदर्श सार्वभौमिक और विश्वबंधुत्व का संदेश देते हैं । इस प्रकार चरित्र चित्रण की दृष्टि से कामायनी में अभिनव संयोग मिलता है ।

इस दृष्टि से प्रसादजी ने अभिनव प्रयोग किया है । यहाँ वे दार्शनिक आनन्दवाद के लक्ष्य तक पहुँच रहे हैं । वे पारंपरिक रसनिष्पत्ति से बहुत आगे बढ़ते हैं । कवि के भाव-निरुपण, वस्तुवर्णन और चरित्र-चित्रण के समन्वय में रस- निष्पत्ति होती है । मनु में क्रमश: शोक, दु:ख, कष्ट, करुणा का संचार होता है । श्रद्धा को छोड़ने, इड़ा से मिलने, संघर्ष में घायल होने, श्रद्धा द्वारा ढूंढ निकाल मानसरोवर पहुँच कर आनन्द पाने जैसी विभिन्न स्थितियों में हम देखते हैं करुणा से शुरू होकर प्रसाद आनन्द तक पहुँचा देते हैं । इसी बीच मनु ने श्रद्धा के साथ प्रेम, रति, सौन्दर्य आदि का समावेश किया है । मनु -इड़ा के मिलन में भी इसके दर्शन होते हैं । जबकि श्रद्धा में वियोग भाव-विरह दशा का श्रेष्ठ चित्रण हुआ है । इसमें प्रकृति भी शामिल होती है ।

रसों के साथ-साथ प्रसाद अलंकार प्रयोग में भी सिद्धहस्त हैं । परंतु पारंपरिक ढंग से हटकर उनमें अभिनव भाव-भंगिमा भर देते हैं । यहाँ अनुभूति भरपूर होने के कारण भावगत अलंकार अधिक हैं । अर्थालंकारों में साम्य एवं वैषम्य दोनों पक्षों को रखा है । फिर भी उपमा, उत्प्रेक्षा और मानवीकरण बहुत प्रभावशाली बन पड़े हैं । विशेष कर 'लज्जा' और 'इड़ा' के समय सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं । यहाँ कवि स्थूल से सूक्ष्म की ओर गतिशील है । अनुप्रास अलंकार का प्रयोग कर कवि ने नाद सौन्दर्य प्रदर्शित किया है । '' नीरव निशीथ में लतिका-सी तुम कौन आ रही हो बढ़ती'' जैसे प्रयोग में रूपक और उत्प्रेक्षाओं का अद्भुत मिश्रित रूप मिलता है ।

1.1.9. भाषा सौन्दर्य :

कवि ने भावनाओं को भाषा कौशल के माध्यम से संजोया है । 'कामायनी' की समूची भाषा भावों के अनुरूप बनी है । विविध भावों के कारण कवि ने भाषा में तदनुरूप मोड़ दिया है । प्रेम प्रसंगों में (कामायनी/श्रद्धा और मनु) कवि ने अत्यंत कोमल -कांत पदावली रखी है । जब कि संघर्ष , कर्म आदि के समय पर प्रखर शब्द प्रयुक्त हुए हैं । इनमें तुमुल रणवाद, ज्वाला, जनसंहार, उत्पात आदि से जुड़े शब्दों का प्रयोग वातावरण को जीवंत बना देता है । जब कि कामना एवं लज्जा के चित्रण में खास कोमल रूप सामने आया है । इस प्रकार सहज माधुर्य-प्रसाद गुण को समायोजित किया है । कवि ने प्रमुखत: लक्षणा और व्यंजना जैसी शब्दशक्ति में अधिक रुचि दिखाई है । चित्रमयी भाषा इस काव्य को अपना विशेष महत्व प्रदान करती है । इस प्रकार वे भावों को साकार रूप प्रदान करते हैं । मानवीय मनोवृत्तियों को साकार रूप देने में वे अतुल्य हैं । चिंता, काम आदि सभी का मानवीकरण रूप मिलता है । 'लज्जा' के संदर्भ में यह सर्वाधिक सफल हुआ है । कवि ने इसमें सरस मधुर शब्द प्रयोग कर संगीतमयता भर दी है । भाषा का माधुर्य संगीत और लय से मिल कर उच्चांग हो उठता है ।

1.1.10. छंद -प्रयोग :

कामायनी की गीतात्मकता, लाक्षणिकता, चित्रमयता और माधुर्य भाव समर्थता इसके सौन्दर्य को अनुपम बना देती हैं । कवि हर सर्ग में प्राय: एक छंद का प्रयोग करते हैं । कवि ने तीस मात्राओं (16 और 14 मात्रा पर विराम) वाले ताटंक छंद का प्रयोग किया है । इसको 'चिंता, निर्वेद, आशा, स्वप्न, आदि सर्गों में प्रयोग किया, 'पादापादकुलक' छंद का उपयोग कवि ने 'लज्जा' और 'काम' सर्ग में किया है । जबकि 'वासना' सर्ग में प्रसाद ने मदन छंद रखा है । यहाँ चौदह और दस में विराम है । इस छंद में चौबीस मात्राओं का प्रयोग है, परंतु अंत में ऽ। का समावेश होता है । 'इड़ा' में गीतों का समावेश है । जबकि 'रहस्य', 'ईर्ष्या और आनन्द ' में अभिनव छंद का प्रयोग किया है । रहस्य, ईर्ष्या और दर्शन के छंदों में दो छंदों का समावेश मिलता है । परंतु प्रसाद ने 'आँसू' के छंद को अंत तक आते आते आनन्द सर्ग में रखा है । 'संघर्ष' सर्ग में कवि ने 24 मात्राओं (11 और 13 पर विराम) का प्रयोग किया है ।

भाषा, शैली एवं भावों के आधार पर 'कामायनी' में अगणित मौलिक संयोजना मिलती हैं । यहाँ छायावादी काव्य की अधिकांश प्रवृत्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं । इसी लिए यह हिंदी का महान महाकाव्य कहलाता है । बदली हुई सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों ने साहित्य को बहुत कुछ बदला है । प्रसाद ने संस्कृत के लक्षण ग्रंथों का अनुसरण नहीं किया । नवीन जीवन दर्शन, मनोवैज्ञानिक

विश्लेषण, परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप आधुनिकतम प्रवृत्तियों को महाकाव्य में समाहित करते हैं । यद्यपि इसकी कथा ऐतिहासिक, पौराणिक ग्रंथों में बिखरी है । इसका कलात्मक सौष्ठव महाकाव्य के निकट है । कवि जीवन के मूल उद्देश्य आनन्द की प्रतिष्ठा करता है । जीवन में समरसता स्थापित करते हैं 'कामायनी' का आनन्दवाद मोक्ष या विराग से दूर है । वह कवि के व्यक्तित्व की संपूर्ण अभिव्यक्ति है । तभी इसे छायावाद युग ही नहीं हिंदी साहित्य की प्रतिनिधि कृति कहा जाता है ।

1.1.11. **शब्दों का अर्थ विवेचन :**

संसृति जलनिधि = संसार का सागर । मधुर विश्रांत = मधुर थकान । मधुकरी = भंवरी । अभिराम = सुन्दर । वर्म = आवरण । लेखा = किरणें । मुक्तव्योम तल = मुक्त आकाश के नीचे । आँख की भूख = दर्शन की तीव्र इच्छा । भूतहित रत = प्राणियों के हित में लगे । महाचिति = विराट चेतनाशक्ति । सर्ग - सृष्टि । भवधाम = संसार रूपी धाम । भूमा - विराट शक्ति जिसमें सब समाया है । समरसता = आनन्द की स्थिति । कल्पितगेह = कल्पना का गृह । निर्मोक = केंचुल । आत्म विस्तार = अपना विकास । पदतल में = पैरों में । संसृति = सृष्टि

1.1.12. **अभ्यास प्रश्न :**

i) दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्न

क) 'कामायनी' में श्रद्धा सर्ग का महत्व स्पष्ट कीजिए ।

ख) श्रद्धा के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित कीजिए ।

ग) 'कामायनी' के रूपक में कामायनी का रूप स्पष्ट कीजिए ।

घ) 'कामायनी' के संदर्भ में श्रद्धा सर्ग की काव्यात्मकता पर प्रकाश डालिए ।

ङ) श्रद्धा सर्ग के कथानक पर प्रकाश डालिए ।

ii) च) मनु को देख श्रद्धा की क्या दशा होती है ?

छ) मनु ने श्रद्धा को क्या उत्तर दिया ?

ज) श्रद्धा के सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए ।

झ) आगन्तुक रमणी इधर क्यों और कैसे आ गई ?

ञ) श्रद्धा और मनु संवाद का वैशिष्ट्य बताइए ।

iii) ट) श्रद्धा का दूसरा नाम क्या है ?

ठ) श्रद्धा किस देश की रहने वाली है ?

ड) 'नील परिधान' किस का था ?

ढ) 'क्या कहूँ...' यह कौन कह रहा है ?

ण) 'महाचिति' शब्द अर्थ बताइए ।

कुछ व्याख्या के लिए प्रसंग :

त) कौन .... अभिषेक।

थ) और देखा .... लिपटा घनश्याम ।

द) नील परिधान .... गुलाबी रंग।

ध) कुसुम कानन .... सदृश अबाध ।

न) कौन हो तुम .... मंद बयार ।

प) एक दिन सहसा .... विश्रब्ध ।

फ) जिसे तुम .... जाओ भूल ।

ब) नित्य समरसता .... द्युतिमान ।

भ) एक तुम .... चेतन आनन्द ।

म) शक्ति के विद्युत्कण .... मानवता हो जाय ।

कामायनी

श्रद्धा सर्ग :

‘कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर
        तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप
        प्रभा की धारा से अभिषेक ?

मधुर विश्रांत और एकांत -
        जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुन्दर गीत
        और चंचल मन का आलस्य !

सुना यह मनु ने मधु गुंजार
        मधुकरी का सा जब सानन्द,
किये मुख नीचा कमल समान
        प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद ;

एक झिटका सा लगा सहर्ष,
        निरखने लगे लुटे से, कौन -
गा रहा यह सुन्दर संगीत ?
        कुतूहल रह न सका फिर मौन ।

और देखा वह सुन्दर दृश्य
        नयन का इंद्रजाल अभिराम,
कुसुम-वैभव में लता समान
        चंद्रिका से लिपटा घनश्याम ।

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त ;
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त ।

मसृण गाँधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म,
ढँक रहे थे उसका वपु कांत
बन रहा था वह कोमल वर्म ।

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग ।

आह ! वह मुख ! पश्चिम के व्योम -
बीच -बीच घिरते हों घन श्याम ;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम ।

या कि, नव इंद्र नील लघु शृंग
फोड़ कर धधक रही हो कांत ;
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत ।

घिर रहे थे घुँघराले बाल
अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास ।

और उस मुख पर वह मुसक्यान !
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम ।

नित्य यौवन छवि से हो दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति ;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति ।

उषा की पहली लेखा कांत,
माधुरी से भींगी भर गोद,
मद भरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक द्युति की गोद ।

कुसुम कानन -अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार ।

और पड़ती हो उस पर शुभ्र
नवल मधु-राका मन की साध ;
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध !

कहा मनु ने नभ धरणी बीच
बना जीवन रहस्य निरुपाय ;
एक उल्का सा जलता भ्रांत
शून्य में फिरता हूँ असहाय ।

शैल निर्झर न बना हतभाग्य
गल नहीं सका जो कि हिम खंड
दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक
आह वैसा ही हूँ पाषंड ।

पहेली सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभियान
बताता है विस्मृति का मार्ग
चल रहा हूँ बन कर अनजान ।
भूलता ही जाता दिन रात
सजल अभिलाषा कलित अतीत
बढ़ रहा तिमिर गर्भ में नित्य
दीन जीवन का यह संगीत ।

क्या कहूँ क्या हूँ मैं उद्भ्रांत ?
विवर में नील गगन के आज
वायु की भटकी एक तरंग ;
शून्यता का उजड़ा सा राजा ।

एक विस्मृति का स्तूप अचेत ;
ज्योति का धुँधला सा प्रतिबिम्ब ;
और जड़ता की जीवन राशि
सफलता का संकलित विलम्ब ।

कौन हो तुम बसंत के दूत
विरस पतझड़ में अति सुकुमार !
घन तिमिर में चंचलता की रेख,
तपन में शीतल मंद बयार ।

नखत की आशा किरण समान,
        हृदय के कोमल कवि की कांत -
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
        कर रही मानस हलचल शांत !

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति
        मिटाता उत्कंठा सविशेष ;
दे रहा हो कोकिल सानन्द
        सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश : -

भरा था मन में नव उत्साह
        सीख लूँ ललित कला का ज्ञान
इधर रहा गंधर्वों के देश,
        पिता की हूँ प्यारी संतान ।

घूमने का मेरा अभ्यास
        बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य ;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त
        हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य ।

दृष्टि जब जाती हिम-गिरि ओर
        प्रश्न करता मन अधिक अधीर
धरा की यह सिकुड़न भयतीत
        आह कैसी है ? क्या है पीर ?

मधुरिमा में अपनी ही मौन
        एक सोया संदेश महान,
सजग हो करता था संकेत ;
        चेतना मचल उठी अनजान ।

बढ़ा मन और चले ये पैर
शैल मालाओं का शृंगार ;
आँख की भूख मिटी यह देख
आह कितना सुन्दर सम्भार !

एक दिन सहसा सिंधु अपार
लगा टकराने नग तल क्षुब्ध ;
अकेला यह जीवन निरुपाय
आज तक घूम रहा विश्रब्ध ।

यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न
भूत-हित-रत किसका यह दान !
इधर कोई है अभी सजीव,
हुआ ऐसा मन में अनुमान ।

तपस्वी ! क्यों इतने हो क्लांत ?
वेदना का यह कैसा वेग ?
आह ! तुम कितने अधिक हताश
बताओ यह कैसा उद्वेग !

हृदय में क्या है नहीं अधीर,
लालसा जीवन की निश्शेष ?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग
तुम्हें मन में धर सुन्दर वेश !

दु:ख के डर से तुम अज्ञात
जटिलताओं का कर अनुमान ;
काम से झिझक रहे हो आज,
भविष्यत् से बन कर अनजान ।

कर रही लीलामय आनन्द
　　महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
　　इसी में सब होते अनुरक्त ।

काम मंगल से मंडित श्रेय
　　सर्ग, इच्छा का है परिणाम ;
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल
　　बनाते हो असफल भवधाम ।

दु:ख की पिछली रजनी बीच
　　विकसता सुख का नवल प्रभात ;
एक परदा यह झीना नील
　　छिपाये है जिसमें सुख गात ।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
　　जगत की ज्वालाओं का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान
　　कभी मत इसको जाओ भूल ।

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
　　हो रहा स्पंदित विश्व महान,
यही दु:ख सुख विकास का सत्य
　　यही भूमा का मधुमय दान ।

नित्य समरसता का अधिकार
　　उमड़ता कारण जलधि समान ;
व्यथा से नीली लहरों बीच
　　बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान ।

लगे कहने मनु सहित विषाद -
मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध
उठाते मानस में सविलास !

किन्तु जीवन कितना निरुपाय !
लिया है देख नहीं संदेह ;
निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का वह कल्पित गेह ।

कहा आगंतुक ने सस्नेह -
अरे तुम इतने हुए अधीर !
हार बैठे जीवन का दाँव,
जीतते मर कर जिसको वीर ।

तप नहीं केवल जीवन सत्य
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा
सो रहा आशा का अह्लाद ।

पुरातनता का यह निर्मोक
सहन करती न प्रकृति पल एक ;
नित्य नूतनता का आनन्द
किये है परिवर्तन में टेक ।

युगों की चट्टानों पर सृष्टि
डाल पद चिह्न चली गंभीर
देव गंधर्व असुर की पंक्ति
अनुसरण करती उसे अधीर ।

एक तुम यह विस्तृत भू खंड
प्रकृति वैभव से भरा आनन्द ;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़ का चेतन आनन्द ।

अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते ? तुच्छ विचार !
तपस्वी ! आकर्षण से हीन
कर सके न आत्म विस्तार ।

दब रहे हो अपने ही बोझ
खोजते भी न कहीं अवलम्ब,
तुम्हारा सहचर बनकर क्या न
उऋण होऊँ में बिना विलम्ब ?

दबा माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास ।

बनो संसृति के मूल रहस्य,
तुम्हीं से फैलेगी यह बेल ;
विश्व भर सौरभ से भर जाय
सुमन के खेलो सुन्दर खेल ।

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान -
शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विाव में गूँज रहा जय गान ।

डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगल मय वृद्धि ;
पूर्ण आकर्षण जीवन केंद्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि ।

देव-असफलताओं का ध्वंस
प्रचुर उपकरण जुटा कर आज ;
पड़ा है बन मानव संपत्ति
पूर्ण हो मन का चेतन राज ।

चेतन का सुन्दर इतिहास
अखिल मानव भावों का सत्य ;
विश्व के हृदय -पटल पर दिव्य
अक्षरों से अंकित हो नित्य ।

विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण ;
पटे सागर बिखरे ग्रह-पुंज
और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण ।

उन्हें चिनगारी सदृश्य सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द ;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल भू जल में रहे न बंद ।

जलधि के फूटे कितने उत्स
द्वीप कच्छप डूबें-उतरायें ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति
अभ्युदय का कर रही उपाय ।

विश्व की दुर्बलता बल बने,
पराजय का बढ़ता व्यापार
हँसाता रहे उसे सविलास
शक्ति का कीड़ामय संचार ।

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाए ।

***

‘लज्जा’ सर्ग

1.2. ‘लज्जा’ सर्ग :

आपने पहले छायावाद की रूपरेखा एवं जयशंकर प्रसाद का परिचय प्राप्त किया । फिर ‘कामायनी’ की कथा और काव्यात्मक स्वरूप पर विचार किया गया । बाद में हमने ‘श्रद्धा’ सर्ग का विस्तृत अध्ययन किया है । अब यहाँ पर ‘लज्जा’ सर्ग पर चर्चा की जायेगी ।

1.2.1. ‘लज्जा’ सर्ग का कथानक :

चांदनी रात है । मनु ने श्रद्धा को देखकर अत्यंत प्रेमपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किया । मनु के अत्यंत कोमल और आंतरिक उद्‌गारों से श्रद्धा प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती । इस सर्ग में श्रद्धा और लज्जा का आपसी वार्तालाप वर्णित है । यहाँ पर श्रद्धा के समर्पित भाव के बीच में अचानक कुछ भाव उपस्थित हो जाता है । उसीके मानवी रूप को कवि ने ‘लज्जा’ कहा है । इसके आने पर श्रद्धा की स्थिति बदल जाती है । वह कौतूहल में भर उसे पूछती है, फिर लज्जा उत्तर देती है । अंत में लज्जा उसे महत्वपूर्ण सीख देती है । इस सर्ग में पग-पग पर मनोभावों को मूर्त रूप दिया गया है । अत: इस पूरे सर्ग की वायवीय स्थिति होने पर भी प्रसाद ने अत्यंत रमणीय एवं मनोरम प्रस्तुति की है ।

लज्जा का स्वरूप पहले पहल अस्पष्ट है । पर मन में भर जाने से उसमें परिवर्तन हो रहा है । श्रद्धा इसे समझ नहीं पाती । अत: पूछ रही है - तुम कौन हो ? मेरा सारा शरीर रोमांच से भर रहा है । अंग-अंग मोम की तरह कोमल हो रहा है । पलकें मेरी झुक रही हैं । मनु को छूने में भी झिझक हो रही है । अजब सी परवशता भर रही है । मैं कुछ भी करने में स्वतंत्र नहीं ।

यह सुनकर लज्जा उसे समझा रही है । मेरे आने से इतना चमत्कृत होने की जरूरत नहीं । मेरे कारण स्त्रियों के स्वेच्छाचारिणी होने पर अंकुश लगता है । प्रेम पथ पर आगे जाने से पहले कुछ विचार कर लो, यौवन तो दूर तक बहा ले जायेगा, बड़ी शक्ति है इसमें । पर मैं रोक कर सदाचार का मार्ग दिखाती हूँ । मर्यादा में रहने की ओर संकेत देती रहती हूँ ।

यह सुन कर श्रद्धा कहती है - मैं तुम्हें समझ रही हूँ । अब बोलो कि कौन सी राह ठीक है ? नारी होने के नाते स्वभावत: दुर्बल हूँ । मेरा मन कमजोर हो रहा है । मुझे लगा है पुरुष पर विश्वास कर उसका आश्रय पाने में जीवन सार्थक लगता है । अत: मैं मनु के आगे सर्वस्व समर्पित करना चाह रही हूँ । बदले

में कुछ पाने की आकांक्षा नहीं ।

अब लज्जा समझ रही है कि श्रद्धा को कुछ भी नहीं समझाया जा सकता । इनमें समर्पण का भाव जम गया । इसने पहले पूरा सोच विचार नहीं किया । अब तो चाहे जो समस्या आये, सर्वस्व अर्पण कर न्यौछावर करना होगा । जीवन का यही मार्ग है । तभी जीवन पथ सुन्दर समतल हो कर अमृत स्रोत की तरह प्रवाहित होगा ।

1.2.2. काव्य सौन्दर्य :

'लज्जा'सर्ग पूरे महाकाव्य में एक विशेष महत्व का दावेदार है । कवि ने 'मानवीकरण' पद्धति का सबसे सशक्त प्रयोग इसी खंड में किया है । श्रद्धा ने मनु को देखकर उसे प्रोत्साहित किया । उसकी उदासी दूर कर उसे कर्म की ओर प्रेरित किया । परंतु इसकी प्रतिक्रिया श्रद्धा पर ज्यादा प्रभावशाली होती है । वह मनु के भाव और देह दोनों को देख न्यौछावर हो उठती है । अब तक स्वयं निरुदिष्ट फिर रही मनु में एक ठिकाना मिलता है । मिल कर कुछ सार्थक करने का भाव जागता है । यह सब समर्पण बिना संभव नहीं । परंतु उसमें एक अनजान भाव आकर रोकता है । यह अदृश्य सत्ता 'लज्जा' ही है । कवि ने उस भाव को मानवी रूप में लाकर आदान-प्रदान के स्तर पर खड़ा किया है । लज्जा तो श्रद्धा में छुपा एक मनोभाव है । पर कवि ने उसे मानवी रूप में भावों के आदान-प्रदान का माध्यम बना दिया है । इस प्रकार महाकाव्य को एक सार्थक रूप में आगे बढ़ाया है । 'लज्जा' का यह सौन्दर्य, प्रेम के नियंत्रक एवं मूल्यों के नियामक रूप में श्रद्धा से वार्तालाप, हिंदी साहित्य में अनूठा बन पड़ा है ।

कविता में नाना अलंकारों का प्रयोग कर उसे उत्कृष्ट रूप दिया है । 'निखरी हो ऊषा की लाली' और 'भोला सुहाग' जैसे विशेषण विपर्यय अलंकार के उदाहरण हैं । चित्ताकर्षक उपमाओं की तो झड़ी सी लग जाती है । 'नयनों का कल्याण' और 'आँखों का संचार' 'नयनों की नीलम की घाटी' जैसे मधुर स्थल मोह लेते हैं । जगह-जगह श्लेष अलंकार (जैसे मानस-हृदय, तालाब) काव्य सौन्दर्य को बढ़ा देता है । रूपक और उपमा के उदाहरणों से तो यह सर्ग भरा है ।

विभिन्न उक्तियों के माध्यम से कवि ने सौन्दर्य और यौवन के परस्पर संबंध को दिखा कर मधुर भावनाओं का उन्मेष किया है । मानवीकरण की धारा में कवि ने कामदेव को भी साकार रख मनु के मन में स्थानित किया है ।

इस सर्ग की काव्य भाषा अपने ढंग की अनूठी है । यहाँ कवि पूरी तरह प्रतीकात्मक भाषा लेकर श्रद्धा और लज्जा को एक कर रहे हैं । कविता का सारा माधुर्य प्रसंगानुकूल ललित शब्दावली से संभव हुआ है । इसमें घटना प्रवाह उतना नहीं मिलता, जितना तीव्र भाव प्रवाह, भावों का आदान-प्रदान हो रहा है । पूरे काव्य में यह प्रसंग सर्वाधिक मार्मिक बना है ।

1.2.3. अभ्यास प्रश्न :

a) दीर्घ उत्तर मूलक :

i) लज्जा और श्रद्धा के संवाद का सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए ।

ii) 'लज्जा' सर्ग के कथानक की समीक्षा कीजिए ।

iii) लज्जा सर्ग के संदर्भ में कामायनी के मूल्यबोध पर प्रकाश डालिए ।

iv) 'लज्जा' सर्ग की काव्य भाषा का विशेषत्व बताइए ।

v) 'लज्जा' सर्ग के आधार पर कामायनी के काव्य रूप पर विचार कीजिए ।

b) संक्षिप्त उत्तर मूलक प्रश्न :

i) 'लज्जा' ने श्रद्धा को अपना क्या परिचय दिया ?

ii) 'लज्जा' के अस्तित्व पर प्रकाश डालिए ?

iii)श्रद्धा की स्थिति कैसी हो जाती है ?

iv) लज्जा ने श्रद्धा को क्या सीख दी ?

v) लज्जा का श्रद्धा पर क्या प्रभाव पड़ा ?

c) अति संक्षिप्त उत्तर वाले प्रश्न :

क) रति की प्रति कृति कौन है ?

ख) लज्जा क्या सिखाती है ?

ग) संध्या की लाली बन कौन छा जाती है ?

घ) लज्जा को देख कौन चमत्कृत होती है ?

ङ) कवि ने चपल यौवन और सौन्दर्य की धाय किसे कहा है ?

च) नवयुवती के कपोल पर लाली कब आ जाती है ?

छ) जब भी तोलने लगती है, तो कौन तुल जाती है ?

ज) देव-दानव युद्ध में अंत में किसकी विजय होती रही है ?

झ) 'पीयूष स्रोत सी बहा करो ..... के सुन्दर समतल में ।''

खाली स्थान में उचित शब्द रखिए ।

ञ) लज्जा का कहाँ प्रवेश होता है :

ए. कान

बी. नाक

सी. आँख

डी. मन।

d) व्याख्या के लिए कुछ प्रसंग :-

ट) इतना न चमत्कृत हो बाले .... विचार करो ।

ठ) नयनों की नीलम घाटी .... पाती हो ।

ड) मैं उसी चपल .... समझाती ।

ढ) लाली बन .... कानों की लाली ।

ण) नारी तुम केवल श्रद्धा हो .... सुन्दर समतल में ।

त) आँसू के भीगे अंचल पर .... लिखना होगा ।

कामायनी

लज्जा सर्ग :

इतना न चमत्कृत हो बाले
        अपने मन का उपकार करो,
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
        ठहरो कुछ सोच-विचार करो !
अम्बर-चुम्बी हिम-शृंगों से
        कलरव कोलाहल साथ लिए,
विद्युत की प्राणमयी धारा
        बहती जिसमें उन्माद लिये ।
मंगल कुंकम की श्री जिसमें
        निखरी हो ऊषा की लाली,
भोला सुहाग इठलाता हो
        ऐसी हो जिसमें हरियाली ।
हो नयनों का कल्याण बना
        आनन्द सुमन-सा विकसा हो,
वासन्ती के वन-वैभव में
        जिसका पंचम स्वर पिक-सा हो ।
आँखों के साँचे में आकर
        रमणीय रूप बन ढलता-सा,
नयनों की नीलम की घाटी
        जिस रस धन से छा जाती हो,
वह कौंध कि जिससे अन्तर की
        शीतलता ठंढक पाती हो,
हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का

गोधूली की-सी ममता हो,
जागरण प्रात-सा हँसता हो ;
जिसमें मध्याह्न निखरता हो ।
हो चकित निकल आई सहसा
जो अपने प्राची के घर से,
उस नवल चन्द्रिका-से बिछले
जो मानस की लहरों पर से ।
फूलों की कोमल पंखुड़ियाँ
बिखरें जिसके अभिनन्दन में,
मकरन्द मिलाती हों अपना
स्वागत के कुंकम चन्दन में ।
कोमल किसलय मर्मर-रव-से
जिसका जयघोष सुनाते हों,
जिसमें दु:ख-सुख मिलकर मन के
उत्सव आनन्द मनाते हों ।
उज्वल वरदान चेतना का
सौंदर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनन्त अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं ।
मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती हो,
बन आवर्जना-मूर्ति दीना
अपनी अतृप्ति-सी संचित हो ।
अवशिष्ट रह गई अनुभव में
अपनी अतीत असफलता-सी
लीला-विलास की खेद भरी
अवसाद -मयी श्रम-दलिता-सी ।

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
        मतवाली सुन्दरता पग में
        नूपुर-सी लिपट मनाती हूँ ।
लाली बन सरस कपोलों में
        आँखों में अंजन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुँघराली
        मन की मरोर बनकर जगती ।
चंचल किशोर सुन्दरता की
        मैं करती रहती रखवाली ।
मैं वह हलकी-सी मसलन हूँ
        जो बनती कानों की लाली ।

* * *

हाँ ठीक परन्तु बताओगे
        मेरे जीवन का पथ क्या है ?
इस निविड़ निशा में संसृति की
        आलोकमयी रेखा क्या है ?
यह आज समझ तो पाई हूँ
        मैं दुर्बलता में नारी हूँ,
अवयव की सुन्दर कोमलता
        लेकर मैं सबसे हारी हूँ ।
पर मन भी क्यों इतना ढीला
        अपने ही होता जाता है,
घनश्याम-खण्ड-सी आँखों में
        क्यों सहसा जल भर आता है ?
सर्वस्व-समर्पण करने की
        विश्वास-महातरु-छाया में,
चुपचाप पड़ी रहने की क्यों
        ममता जगती है माया में ।
छायापथ में तारक-द्युति-सी

झिलमिल करने की मधु-लीला,
अभिनव करती क्यों इस मन में
कोमल निरीहता श्रम-शीला ?
निस्संबल होकर तिरती हूँ,
इस मानस की गहराई में ;
चाहती नहीं जागरण कभी
सपने की इस सुघराई में ।
नारी जीवन का चित्र यही
क्या ? विकल रंग भर देती हो,
अस्फुट रेखा की सीमा में
आकर कला को देती है ।
रुकती हूँ और ठहरती हूँ
पर सोच विचार न कर सकती ;
पगली-सी कोई अन्तर में
बैठी जैसे अनुदित बकती ।

***

निराला

1.3. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

1.3.1. परिचय :

निरालाजी का जन्म मेदिनीपुर जिले के महिषादल में 1887 ई. में हुआ । कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में जन्म ले कर भी वे पंडिताई ढंग से जीवन यापन में विश्वासी नहीं थे । यद्यपि तीन वर्ष की उम्र में माँ का देहावसान हो गया । अत: पालन-पोषण के लिए घर पर धाय रखी गई । सूर्यकुमार की प्रारंभिक पढ़ाई महिषादल में हुई । कम उम्र में (1911) इनका विवाह मनोरमादेवी से हुआ । एक पुत्र(रामकृष्ण) और पुत्री(सरोज) जन्म के बाद उनका देहान्त हो गया । निराला इस आघात से टूट गए । फिर मुश्किल से सम्हाला स्वयं को । कोलकाता में कुछ दिन 'समन्वय' पत्र का काम देखा । परंतु बाद में वे 'मतवाला' में आ गए । अब साहित्य जगत से प्रत्यक्ष संपर्क हो गया । इलाहाबाद में साहित्यकारों (विशेष कर सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा) से उनकी घनिष्ठता हुई । वे दारागंज में रहते । वहीं प्रेस में काम किया । जो हो , कहीं वे जम कर नहीं रह सके । इसी कारण आर्थिक स्थिति हमेशा खराब रही । लंबे अर्से की बीमारी के बाद 15अक्टूबर 1961 को उनका देहान्त हो गया ।

छायावाद ही नहीं हिंदी साहित्य के सबसे अक्खड़ और स्पष्टवादी कवि निराला थे । उनके उग्र स्वभाव के कारण आगे चल कर वे सबसे अलग हो गए । अब उनकी स्थिति और खराब हो गई । मानसिक रूप से अस्वस्थ हो कर लेखन भी विशेष नहीं कर पाये । इसी रुग्णावस्था में 15 अक्टूबर १९६१ को महाप्राण निराला का देहावसान हो गया ।

1.3.2. निराला काव्य की वैचारिक दृष्टि :

निरालाजी घोषित रूपमें कभी राजनीति में नहीं कूदे । उन्होंने किसी आंदोलन में भाग नहीं लिया, चाहे वह राजनीति का हो, समाज कल्याण का हो, धार्मिक शुचिता हो अथवा अन्य किसी गतिशील विषय को लेकर । लेकिन निराला में प्रतिवाद की भावना थी, क्रांति चेतना थी । नूतन के प्रति विशेष आग्रह था । अंधविश्वासों, धारणाओं तथा परंपराओं के प्रति कोई आकर्षण नहीं था । अत: इस भाव वाले व्यक्ति की भाषा एकार्थी और सीधी-सपाट नहीं हो सकती ।

निराला के समय में स्वतंत्रता संग्राम चल रहा था । गांधी, गोखले, तिलक, गोपबन्धु, पाल,

लाल, सुभाष, राजगोपालाचारी आदि नेतागण सारे देश में विविध क्षेत्रीय आंदोलन एक ही लक्ष्य को ले कर चला रहे थे । यहाँ पर देश दुहरे दमन का शिकार था । अंग्रेजों के अलावा देसी रियासतें उनके बल पर मनमानी शासन में लगी थी । इधर देश स्वयं अंधविश्वासों, अशिक्षा, दरिद्रता, विकासहीनता या पिछड़ेपन के चक्र में फंसा था । किसान की दुर्दशा अवर्णनीय थी । मजदूर तो मूक और असहाय था । दुर्बल नहीं । इस प्रकार पराधीनता की बेड़ियों पर सब सचेतन थे । अन्य अनेक बाधायें थी जो मनुष्य को नीचे दबा रही थी । देश का चेतन अंश सोया हुआ था । उसे जगाना, सचेत करना और फिर आंदोलन के जरिये उसे मुक्ति की बात कह कर आगे बढ़ाना जरूरी था । सामाजिक विकास के लिए यह जागृति का शंख गांधी ने आन्दोलन राजनैतिक मंच पर फूंका । साहित्यकारों ने विभिन्न विधाओं में इसे अपने ढंग से रूपाकार दिया । स्वाधीनता, पराधीनता और संग्राम साहित्य के विषय थे । इसमें राष्ट्रीयता मुख्य स्वर था । यह चेतना जगाने के लिए आवश्यक था । हर तरफ की पराधीनता (आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, वैचारिक) के विरुद्ध चेतना जाग्रत हुई । इन से समाज विकास की नयी धारा खुलती है । अत: ये मूल्य हमारे जीवन के अभिन्न अंग बन गए । अब मुक्ति के लिए जो राष्ट्रीय संघर्ष चल रहा था, साहित्यकार भी उसका अंग था । रचनाकारों ने अतीत के गौरवशाली पक्ष को उजागर किया, भारतीय चेतना में रचे-बसे मिथकों को पुन:व्याख्यायित किया । इसके प्रखर स्वर से भारतीय सोये जनमानस को जगाने का भगीरथ प्रयास किया । पराधीनता से मुक्त होने के लिए अतीत की महान गौरव गाथा का बोध जरूरी था । इसलिए साहित्यकार इन दार्शनिक तारोंको छेड़ कर प्रेरित करने लगा ।

1.3.3. निराला का प्रेरणा स्रोत :

यही सब स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान चल रहा है । मुक्ति की संवेदना उनमें प्रमुख स्वर है । यह विदेशी सत्ता से मुक्ति का आह्वान है । मुक्ति की इस विचारधारा में उनके अनुभव, उनका चिंतन-अध्ययन और मित्रों से मिला है । निराला का अध्ययन गहरा था । मित्र वर्ग भी खूब विशाल था । भिन्न-भिन्न कविताओं में भिन्न-भिन्न रूप मिलता है । कवि ने यह रूप एकता को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया है । भारतीय विविधता में एकता का सूत्र बहुत समय से रहा है । यहाँ विविध जातियाँ, संस्कृतियाँ और परंपरायें आकर बसी हैं, फिर साथ-साथ रहने भी लगी । विदेशी नये आये, उन्होंने इनके बीच भेद, दरार के प्रयास किये । बांटने की कोशिशें की । आपसी सौमनावस्था को तोड़ कर द्वेष, विभेद एवं विवाद के बीज बोये गए । निराला ने इसे खूब अच्छी तरह समझा था । अत: एकता, समरसता जैसे विचार लेकर विभिन्न कविताओं में भाव ग्रंथन किया । परंतु मूलत: अंग्रेजी राज से मुक्ति का आंदोलन इस युग की चेतना पर छाया था । अत: देश की आजादी काव्यचेतना का मुख्य स्वर रहा । इसमें पुराणेतिहास के कथानकों को आधार बनाया, समकालीन यथार्थ को रंग दिया अथवा जीवन के, प्रकृति के विविध चित्र

अंकित किये । निराला के मानस पर यह भाव प्रमुख रूप से छाया रहा ।

1.3.4 निराला काव्य में नवचेतना :

छायावादी युग भले ही बहुत थोड़े समय तक सक्रिय रहा । परंतु उसमें हिंदी साहित्य को नूतनता का भरपूर स्वाद दिया । यह भाव, भाषा और शैली हर दृष्टि से अनूठा था । यही युग है जब खड़ी बोली की अपनी काव्य भाषा और काव्य चेतना का विकास हो रहा था । कविता में एक उच्चस्तर पर स्थापना के अभिनव प्रयास हो रहे थे । इसमें सर्वाग्र छायावादी रचनाकार आते हैं । निराला ने तो घोषित कर दिया था -

''नवगति, नवलय, ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद - मंद्र रव
नव नभ के नव विहंग वृंद को
नव वर नव स्वर दे ।''

यह नव स्वर कवि की पूरी चेतना को व्यंजित कर रहा है । निराला ने भाषा को लेकर विविध प्रयोग किये हैं । संस्कृत निष्ठ दुरुह-समासयुक्त भाषा से लेकर एकदम बोलचाल की सरल-सहज अभिव्यक्ति का प्रयोग हुआ है । 'राम की शक्ति पूजा' का भाषा प्रयोग कुकुरमुत्ते से बहुत अधिक विविधता के संकेत देता है । इसी प्रकार निराला ने काव्य रूपों में अपार विविधता प्रदर्शित की है । एक ओर गीतों की भरमार है तो दूसरी ओर उन्होंने लंबी कविताओं में नये प्रतिमान स्थापित किये हैं । हिंदी में मुक्तछंद को शुरू करने और स्थापित करने में निराला ही अग्रणी हैं ।

हिंदी कविता अब तक पारंपरिक हो या नूतन, छंदों का बंधन अपरिहार्य मानती रही । निराला ने पहली बार स्वच्छंद छंद का प्रयोग किया । तुकांत पदावली के दबाव से कविता को मुक्त किया । एक नया पैटर्न कविता को दिया । यहाँ उदाहरण के लिए 'बादल राग' को ले सकते हैं । आकाश में मुक्त विचरण करता बादल और वह भी एक विशेष दिशा और देश की ओर गति करता है । निराला की गति इसी रूप में मुक्त होने पर भी अनार्की वाली नहीं है । अंग्रेजी के 'सानेट' की तरह सीमित पंक्तियों में काव्याभिव्यक्ति हो रही है । लेकिन निराला ने महाकाव्य का विकल्प देते हुए लंबी कविता के रूप में 'राम की शक्ति पूजा' प्रस्तुत की है । छंद का यह एक अभिनव प्रयोग है । यहाँ कविता बड़ा कैनवास लेकर चलती है । अत: भाषा, ध्वनि, छंद हर स्तर पर कवि एक ऊँचा स्तर चुन कर चलता है । इनमें मात्रिक छंदों से बढ़कर ध्वन्यात्मकता का प्रभाव अधिक है । 'राम की शक्ति पूजा' में निराला अनुप्रास का अत्यंत प्रभावी प्रयोग कर रहे हैं । इसके विविध अंग इतनी स्वाभाविकता से आते हैं कि पाठक के

सामने पूरा दृश्य गूंजने लगता है । युद्ध हो, निराशा हो, उत्साह हो, प्रेम हो, स्मृति .... विविध भावों के इस समारोह में निराला ने ध्वनि का सर्वाधिक सार्थक प्रयोग किया है ।

विशेष कर विविध गीतों(जैसे प्रेम गीत, प्रकृति से जुड़े गीतों, प्रार्थना गीतों, राष्ट्रभाव से प्रेरणाप्रद गीतों) में निराला ने अगणित प्रयोग किये हैं । कुछ गेय हैं तो कुछ पाठ्य ! कुछ में आत्मसाक्षात्कार का स्वर है तो कुछ में लोकगीत की शैली पर लोकजीवन व्यंजक गीत हैं । लोक और शास्त्र दोनों को भिन्न-भिन्न गीतों में निराला ने नये ढंग से व्यंजना दी है ।

निराला प्रेम, प्रकृति और प्रगति के कवि हैं । यह प्रेम मानव प्रेम, व्यक्ति प्रेम, राष्ट्र प्रेम से लेकर जग प्रेम तक विभिन्न स्तरों पर विविध रूपों में व्यक्त हुआ है । रोमांटिक धारा तो हमें रीतिकाल से विरासत में मिल जाती है । उसी प्रकार प्रार्थना भी हमें भक्तिकाल के आधुनिक संदर्भ में अभिनव संरचना सहित मिलते हैं । यहाँ पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के परिप्रेक्ष्य में निराला ने भारत को राष्ट्रदेवता के रूप में चित्रित किया है । इसमें राष्ट्रीयता को खूब सचेतन हो कवि व्यंजित कर रहा है । मातृभूमि को मातृशक्ति रूप में एक दृढ़ संकल्प के साथ वंदना कर रहा है । यही अभिनव रूप भाषा, भाव, छंद सर्वत्र परिलक्षित हो रहा है । विषय दृष्टि से कवि ने समकालीन यथार्थ को खूब गहराई से लिया है । राजनैतिक यथार्थ को संघर्ष का रूप देकर 'राम की शक्ति पूजा' है तो उधर 'भिक्षुक' में आर्थिक यथार्थ को रूपाकार देते हैं । प्रयोग की व्यापकता का इससे बड़ा प्रतीक और क्या हो सकता है !

1.3.5. 'राम की शक्ति पूजा' का कथानक :

छायावादी सृजन संभार में 'राम की शक्ति पूजा' अपने ढंग का अनूठा अंश है । इसे दीर्घ कविता, लंबी कविता, प्रबोधात्मक कविता आदि अनेक नामों से संबोधन किया गया है । इसमें महाकाव्यात्मक गंभीरता एवं व्यापकता का समावेश हुआ है । निराला की यह कृति उभय कथानक एवं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अनुपम है । भारतीय जीवन में सर्वाधिक व्याप्त राम के महत्वपूर्ण प्रसंग को लेकर इस कृति की रचना की गई है । सबसे महत्व की बात है कि यहाँ निराला ने तुलसी की तरह 'राम' को ब्रह्म भी कहा है और मानव भी । ब्रह्म ही राम रूप है और मानव राम ही ब्रह्म है । दोनों की अंतर्व्याप्ति को निराला ने बहुत सुन्दर ढंग से रेखांकित किया है ।

कथानक के प्रारंभ में राम-रावण के युद्ध में चिंतित राम के दर्शन होते हैं । उस दिन रावण से प्रत्यक्ष युद्ध में राम का बाण रावण को स्पर्श नहीं कर पाता । तब राम ने गौर से देखा - वहाँ पर कुछ और ही दृश्य है । रावण ने शक्ति की आराधना कर उसे प्रसन्न कर लिया है । वे उसके पीछे खड़ी होकर राम और राम की सेना के सारे प्रहार अपने ऊपर ले लेती है । राम का मन इस दृष्टि से चौंक जाता है । उस संध्या युद्ध स्थगित कर शिविर लौट आते हैं । मंत्रणा हेतु सेनाध्यक्ष आदि सब बैठे हैं । राम दिन का समर

याद कर उदास हो उठते हैं । उन्हें लगता है देवी के आशीर्वाद के कारण युद्ध में रावण को जीतना कठिन है ! वे स्मृति में अतीत के दृश्यों में खो जाते हैं - इसमें ताड़का-सुबाहु वध, पुष्पवाटिका में सीता से भेंट, खरदूषण त्रिशिरा वध आदि प्रसंग आँखों के आगे तैर जाते हैं । तभी रावण का छाया रूप गरजता लगता है । राम निराशा में घिर जाते हैं । राम की आँख भर आती हैं । आँसू टपक पड़ते हैं । वीर हनुमान यह देख कर विचलित हो उठते हैं । उन्चास पवन बहने लगे, अट्टहास कर वे महाकाश में पहुँच जाते हैं । समुद्र भी हिल उठता है । अपने विशाल आकार में इस सृष्टि को ही निगलने पर उतारु हो जाते हैं । शिव भी डोल गए । वे शक्ति को समझाते हैं, यह बालब्रह्मचारी है, इसे जीतना कठिन है । राम की अर्चना में सक्षम है । इसे प्रहार कर कोई परास्त नहीं कर सकता । संघर्ष की जगह विद्या से समझाना होगा, तभी यह झुकेगा । अब शक्ति अंजना रूप में प्रकट होकर कहने लगी - बचपन में सूर्य निगलने की बात पर मैं कितनी दु:खी हुई । तब वह अबोधपन था । आज क्या महाकाश निगलने जा रहे हो ! यह शिव का निवास है ! राम ने इसके लिए तुम्हें आज्ञा दी है ? हनुमान झिझक कर शांत हो जाते हैं । वे धीरे-धीरे उतर प्रभु पद में ध्यान लगाते हैं । राम के खिन्न भाव पर विभीषण ने पूछा तो राम ने सारी बात बतायी । दु:खी राम ने कहा - अब हम नहीं जीत सकते । अब यह युद्ध राक्षस और नरबानर के बीच नहीं है । उधर महाशक्ति हैं ! जिधर अन्याय, उधर महादेवी !'' राम का कंठावरोध । यह देख जांबवान सलाह देते हैं - हे पुरुष सिंह ! इसमें विचलन कैसा ? रावण ने शक्ति आराधना की । अब आप भी शक्ति को अपने पक्ष में कर सकते हैं, आप शुद्ध पूत होकर जरूर शक्ति को प्रसन्न कर सकते हैं ! शक्ति की मौलिक कल्पना करें । समर तब तक न करें । हम सब सन्नध हैं । बीच में हमारे सेनानायक होंगे लक्ष्मण, बांयी ओर अंगद, दाहिने हनुमान । नल, नील, सुग्रीव, विभीषण आदि उनकी मदद में रहें । राम इस प्रस्ताव को मान कर प्रस्तुत हो गए । उस शक्ति की कल्पना ऐसी है कि सामने हरे-भरे वृक्षों से सुन्दर खड़ा पर्वत दुर्गा, दस दिशा उसके हाथ, सामने गरजता सिंधु ही सिंह है और विराट फैला आकाश शशिशेखर शिव है ।

पूजा के लिए देवीदह से कमल पुष्प लाने का कार्य हनुमान को सौंपा । इधर युद्ध और उधर राम की उपासना ! क्रमश: ध्यान केंद्रीभूत होकर छ: दिन में आज्ञाचक्र में केन्द्रित हो जाता है । आठवें दिन ऊपर सहस्रार कमल तक पहुँचा है ध्यान । रात के समय दुर्गा प्रकट होकर अंतिम कमल को उठा लेती हैं । अर्पण के लिए कमल न मिला तो ध्यान से हट कर राम ने आँख खोली । कमल नहीं ! आसन छोड़ने पर असिद्धि होती है ! वे स्वयं को धिक्कारने लगे । लगा अब जानकी का उद्धार असंभव है ! तभी स्मृति सचेत हो उठी । बचपन में माँ मुझे स्नेह में राजीव नयन कहती ... तो दो कमल मेरे पास हैं ! एक नेत्र कमल दे पूजा संपन्न कर सकूंगा । बाण लेकर दाहिनी आँख निकाल अर्पित करने उद्यत हो जाते हैं । देवी ने प्रकट होकर दर्शन दिये । मानो साधना सफल हुई -''होगी जय होगी जय'' कह कर वह

महाशक्ति राम के शरीर में लीन हो गई !

शक्ति पूजा सारे भारत में प्रचलित है । परंतु नवरात्र और दुर्गापूजा का विशेष महत्व बंगाल में है । वहाँ दुर्गा को प्रसन्न करने का सर्वोत्तम दिवस 'महाष्टमी' माना जाता है । निराला का प्रारंभिक काल बंगाल में बीता है ।

'देवी भागवत' में राम द्वारा देवी आराधना का प्रसंग आता है । नारद उपदेश देते हैं और राम नवरात्रा का व्रत कर देवी को प्रसन्न करते हैं ।

वैसे वाल्मीकि रामायण में अगस्त्य द्वारा आदित्यहृदय का उपदेश देने संबंधी प्रसंग आता है । इस प्रकार से दैवी शक्ति की उपासना के विभिन्न स्रोत उपलब्ध हैं । जब कि हनुमान के महाकाश में जाकर सूर्य को निगलने की बात भी पुराणों में उपलब्ध है । इसी प्रसंग में माँ अंजना का डांटना आदि का उल्लेख है जिसका उपयोग निराला ने यहाँ पर हनुमान के क्रोध को शमन करने के लिए किया है ।

इस कथानक के काव्य रूप के लिए निराला ने 'तांडव स्तोत्र' से प्रेरणा ली है । शिव को प्रसन्न करने रावण ऐसा स्तोत्र रचता है । जिसकी तुलना नहीं । निराला के राम शक्ति को प्रसन्न करने ध्यान मग्न हैं और बस एक पुष्प अर्पण कर रहे हैं प्रतिदिन ! कोई आडंबर नहीं । अर्पण हेतु तन-मन पूरे रूप में तल्लीन हैं । इसीमें साधना सफल होती है ! यह प्रबंध कविता जिस ढंग से सुगठित है, उसके महाशक्ति के आराधना के बौद्धिक - आध्यात्मिक स्तर को सूचित कर रही है ।

1.3.6. प्रतीकात्मकता :

निराला पूर्णत: सचेतन कलाकार थे । केवल काल्पनिक आधार पर या धार्मिक रुढ़ि पर कविता करना उनका लक्ष्य कभी नहीं रहा । मूलत: वह युग स्वतंत्रता संग्राम का था । दुर्धर्ष शक्ति के सामने निरीह जनता आंदोलन लिए खड़ी ! उनके पास सारी आसुरी शक्तियाँ हैं ! इनका सामना आध्यात्मिक साधना से संभव है । त्याग एवं तप से महाशक्ति को अपने पक्ष में करना संभव है । डॉ. रामविलास शर्मा इसकी व्याख्या में कहते हैं -''राम की शक्ति पूजा के प्रतीक इतने सबल और भावपूर्ण हैं, और वे निराला के जीवन -सत्य को ऐसे नाटकीय रूप में प्रस्तुत करते हैं .... यहाँ उन्होंने अपने जीवन की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष, विजय कामना को नाटकीय रूप दिया है । ('राम की शक्ति पूजा और निराला' पृ. -151) डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने बार-बार इस प्रतीक विधान में गांधी का स्वतंत्रता संग्राम, अंग्रेज शक्ति और गांधी के अहिंसा आंदोलन की संगति बिठायी है । महाशक्ति की आराधना किसी भी प्रतिपक्ष का सामना करने की शक्ति प्रदान करती है । निराशा, संशय, हताशा क्षणिक भाव हैं जो आकर विचलित करते हैं । परंतु वे सब उसे दृढ़ प्रतिज्ञ एवं शक्तिशाली बनाने में समर्थ हो जाते हैं । इस प्रकार निराला की यह कृति अपने प्रतीक रूप में संपूर्ण आधुनिक भारतीय काव्य क्षेत्र में अनूठी ही

नहीं, सशक्त और परंपरा संगत धारा में आगे ले जाने वाली है ।

1.3.7. काव्य रूप :

यद्यपि छायावादी युग में भी 'कामायनी' जैसे महाकाव्य रचे गए हैं । परंतु अब उनकी कथा, खंड, भाषा, रूप सब में परिवर्तन दिख रहा है । कहा जा सकता है कि महाकाव्य का स्थान लंबी कविता ने ले लिया । प्रसाद, पंत, निराला आदि ने इसे स्वीकार किया । इसमें कथानक सांगोपांग नहीं हो सकता । एक दीर्घ कथा का अंश लेकर उसे पूर्ण कथा रूप प्रदान किया जाता है । 'राम की शक्ति पूजा' को इस रूप में राम कथा के चरम क्षणों से पूर्व (रावण वध) के प्रसंग को लेकर प्रस्तुत किया । निराला ने' सांस्कृतिक समास शैली' का प्रयोग कर इसमें विविध भाव रूपों का समावेश किया है । राम की निराशा, हनुमान का क्रोध, सीता के स्मरण में प्रेम और ऐसे अनेक संकेत हैं जिनसे इस दीर्घ कविता में नूतनता का समावेश हुआ है । महाकाव्य - खंड काव्य आदि कहने की कोई संभावना नहीं रह जाती । निराला ने लंबी कविता के काव्यविधान को स्वीकार कर उस रूप में गठित किया है । राम की निराशा से आरंभ होकर तपस्या के जटिल मार्ग से गुजर कर कविता आशा और आश्वासन के साथ समाप्त होती है । एक ही लक्ष्य है । उसकी दो-तीन वाधायें हैं । उन पर संकेतात्मक ढंग से विजय प्राप्त कर प्रीक्षा में नायक सफल होता है । यह उत्तीर्णता कविता को चरम लक्ष्य तक पहुँचाती है ।

1.3.8. सौन्दर्य -विधान :

हिंदी के परंपरागत काव्य रूप में निराला नूतन तत्वों का समावेश कर रहे हैं । यहाँ उन्होंने वर्णन कौशल, नाद सौन्दर्य, भाषा प्रयोग, पात्रों के विवरण में बहुत कुछ अभिनवता के दर्शन कराये हैं ।

इस कविता में राम के विषय रूप, हनुमान के क्रोधित रूप, दुर्गा के रूप आदि विभिन्न दृश्यों का वर्णन खूब संयत एवं संश्लिष्ट ढंग से किया है । कहीं भी विस्तार अथवा विवरणात्मक विशालता का प्रमाण नहीं दिया । यहाँ तक कि स्मृति में कभी सीता आती है, कभी माता और दोनों में बहुत संक्षिप्त वर्णन दिया है । उनके वर्णन कौशल का उदाहरण मात्र है ।

नाद सौन्दर्य की दृष्टि से यह अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है । कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगी -

''रावण प्रहार दुर्वार - विकल वानर दल-बल-
मूर्छित - सुग्रीवांगद - भीषण गवाक्ष - गण -नल
वारित - सौमित्र - भल्लपति - अगणित -मल्ल - रोध
गर्जित - प्रलयाब्धि - क्षुब्ध - हनुमान - केवल -प्रबोध''

इन पंक्तियों में रावण का प्रहार, हनुमान का गर्जन जैसी भीषण स्थितियों में 'ल', 'ध' ध्वनियुक्त शब्द

बार-बार आकर स्थिति को प्राणवंत कर देती हैं । उसी प्रकार एक मार्मिक प्रसंग अवतरण करते हैं :

नयनों का नयनों से गोपन प्रिय संभाषण

पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान - पतन

यहाँ कवि ने 'न' और 'प' जैसी कोमल ध्वनियों युक्त शब्दों का बार-बार प्रयोग कर सीता-राम मिलन प्रसंग का माधुर्य जीवंत किया है । उसी तरह देवी के उदय और उसके वरप्रदान प्रसंग की गंभीरता निनादित हो रही है -

''साधु साधु साधक धीर धर्म -धन धन्य राम''

इस उच्चारण में ध्वनि का गांभीर्य और उसकी उच्चांगता सहज रूप में लक्षणीय है । इस संदर्भ में यहाँ ओजपूर्ण वर्णों की आवृत्ति इसके स्तर को और भी ऊँचे कर देती है । वास्तव में काव्य भाषा के रूप में हिंदी निराला को पाकर असीम गौरवान्वित हुई है । समासांत पदावली इसका मुख्य गुण है । कादंबरी(बाम) की तरह निराला ने समासों की ऐसी झड़ी लगाई जो अन्यत्र दुर्लभ है । इसके लिए शुरू में ही 'तीक्ष्क्ष -शर -विधृत - क्षिप्र - कर -वेग -प्रखर ; शतशेलसंबरणशील, सहनशील नभ गर्जित स्वर, राक्षस -विरुद्ध प्रत्यूह, रावण-जय-भय, रिपु दम्य -श्रांत, पृथ्वी -तनया - कुमारिका -छवि'' । और निराला ने पूरी कविता में इसका सक्षमता से निर्वाह किया है ।

पारंपरिक अलंकारों की कोई कमी नहीं । इनमें सादृश मूलक और विरोधमूलक उभय हैं । राम की पीठ, बाहु और वक्ष पर अंधकार के लिए कहा है -

उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार''

उसी प्रकार अलंकारों में 'चन्द्रमुख निंदित रामचन्द्र' एक और निषेध रूप में 'जगता चरण प्रांत पर सिंहवह, नहीं सिंधु' , स्मृति का बार-बार उपयोग कथानक को मोड़ देने के लिए किया गया है । उसमें नाटकीय स्थिति उत्पन्न कर काव्य को विस्मय में भर देती है कवि की यह कल्पना ।

बिम्ब विधान में कवि ने नये से नये बिम्ब रखकर हिंदी काव्य को ऊँचाई दी है । इसमें दुर्गा का या शक्ति का चाक्षुष रूप प्रस्तुत किया । राम के अंतर के भावों को व्यक्त करता सागर गर्जन का बिम्ब है । हनुमान का महाकाश गमन का बिम्ब और फिर लघुरूप !

इस कविता में फ्लैशबैक का प्रयोग कर राम को अपनी कठिन स्थिति में कोई मार्ग ढूँढने का आधार मिल जाता है । राम अतीत में जाते हैं । वहाँ से प्रेरणा पा कर वर्तमान में आ कर खड़े होते हैं । यहाँ से भविष्य की ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखते हैं । जीवन की सकारात्मक दृष्टि ही इस यात्रा का परिणाम है । राम को सुनाई पड़ता है 'होगी जय... होगी जय' सारी विषम स्थिति में भी राम को यह अत्यंत महत्वपूर्ण स्थिति में ले जाती है । निराला का यह प्रयास भारतीय काव्य जगत में मील का पत्थर

बन जाता है । कवि ने काल -स्थान और पात्र तीनों को एक लय में बांध दिया है । इस दृष्टि से 'राम की शक्ति पूजा' का काव्यात्मक महत्व अतुलनीय है । मिथक को लेकर इतना व्यापक काव्य प्रयोग कर निराला वास्तव में निराले प्रमाणित होते हैं । यह 1936 में लिखी कृति आने वाले मिथकीय काव्यात्मक स्वरूप और काव्य दृष्टि के लिए आधार का काम करती है ।

1.3.9. कुछ शब्दों का अर्थ संकेत :

तीक्ष्ण - शर- विधृत = तेज वाणों से बिंधा हुआ । क्षिप्र-कर = तेज किरणें । शतशैल संवरणशील = सैकड़ों पर्वतों के समान स्वभाव का । प्रत्यूह = विघ्न । लोहित लोचन = लाल आँख । विद्धांग = बंधे अंग । उद्‌गीरित = भयंकर रूप में बाहर आना । सत्वर - शीघ्र । रिपु-दम्य-श्रांत = शत्रु दमन में थका नहीं । दुराक्रांत = जिसे हराना असंभव । विदेह = मिथिलापुरी । महानिलय = विराट स्थल । अतल = गहरे । दशस्कन्ध - पूजित = रावण की आराधना की गई । लीलासहचर = लीला में सहयोगी । जानकी - प्राण = श्रीराम । इंदीवर = एक प्रकार का कमल । मायावरण = माया का आवरण । भास्वर = देदीप्यमान

1.3.10. **अभ्यास प्रश्न :**

दीर्घ उत्तर मूलक :

i) 'राम की शक्ति पूजा' की काव्य विधा पर विचार कीजिए ।

2) 'राम की शक्ति पूजा' का मिथकीय काव्य रूप में महत्व स्पष्ट कीजिए

3) 'राम की शक्ति पूजा' के काव्य सैन्दर्य पर प्रकाश डालिए ।

4) 'राम की शक्ति पूजा' के प्रतीकार्थ पर विचार कीजिए ।

लघूत्तरी प्रश्न :

i) राम को देख हनुमान की प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालिए ।

ii) राम की चिंता पर विचार कीजिए ।

iii) राम-रावण युद्ध के समय राम क्यों हताश हो उठे ?

iv) समास शैली की कविता की विशेषता बताइए ।

v) निराला की भाषा की विशेषता स्पष्ट कीजिए ।

अति लघूत्तरी प्रश्न :

क) हनुमान की माता का नाम क्या था ?

ख) महाकाश में किसका निवास बताया ?

ग) कौशल्या राम को किस नाम से पुकारती थी ?

घ) इंद्रनील पुष्प कहाँ से लाने गए थे ?

ङ) अंत में देवी क्या कह लीन होती हैं ?

च) 'भावित नयनों से सजल गिरे' किस के नयनों से गिरे ?

छ) 'संबरो देखि निज निज, नहीं वानर यह' किसने कहा ?

ज) 'एकादश रुद्र' यह किसके लिए कहा गया है ?

झ) 'यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण' किसने कहा ?

ञ) 'हँस उठा ले गई पूजा का प्रिय इंदीवर' किसने उठा लिया ?

व्याख्या के योग्य कुछ अंश :

अ) उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर ..... करने के लिए, फिर वानर -दल आश्रय स्थल ।

आ) 'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार .....
दिग्विजय -अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष ।

इ) यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण .....
हो गए नयन कुछ बूंद पुनः ढलके दृगजल ।

ई) तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर, ...
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन ।

उ) 'साधु साधु साधक वीर, धर्म-धन धन्य राम ।.....
मंद स्मितमुख लख हुई विश्व की श्री लज्जित ।

राम की शक्ति पूजा : (मूल पाठ)

रवि हुआ अस्त : ज्योति के पत्र पर लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत- क्षिप्र-कर वेग प्रखर
शतशेलसम्वरणशील, नीलनभ-गर्ज्जित-स्वर
प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, - भेद-कौशल-समूह-
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, -क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरितवह्नि- राजीवनयन - हत-लक्ष्य-बाण,
लोहितलोचन -रावण-मदमोचन -महीयान
राघव-राघव-रावण-वारण -गत -युग्म-प्रहर
उद्धत-लंकापति -मर्द्दित-कपि-दल-बल-विस्तार
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव-
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार - विकल-वानर-दल-बल-
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष -गय-नल,
वारित -सौमित्र -भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध,
गर्ज्जित -प्रलयाब्धि-क्षुब्ध - हनुमत्-केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर
जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वरा
लौटे युग- दल । राक्षस -पदतल पृथ्वी टलमल,
बिंध महोल्लास से बार-बार आकाश विकल ।
वानर-वाहिनी खिन्न लख निज-पति-चरण-चिह्न
चल रही शिविर की ओर स्थावर-दल ज्यों विभिन्न;
प्रशमित है वातावरण; नमित-मुख सांध्य कमल
लक्षण चिन्ता-पल, पीछे वानर-वीर सकल;
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार ।
आये सब शिविर सानु पर पर्वत के मन्थर
सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान आदिक वानर
सेनापति दल-विशेष के, अंगद हनूमान
नल,नील, गवाक्ष प्रात के रण का समाधान
करने के लिए, फेर वानर-दल आश्रय-स्थल ।
बैठे रघु-कुल-मणि श्वेत शिला पर ; निर्मल जल
ले आये कर -पद-प्रक्षालनार्थ पटु हनूमान;
अन्य वीर सर के गये तीर संध्या-विधान-
वन्दना ईश की करने को, लौटे सत्वर,
सब घेर राम को बैठे आज्ञा को तत्पर ।
पीछे लक्ष्मण, सामने विभीषण, भल्लधीर,
सुग्रीव, प्रान्त पर पाद-पद्म के महावीर,
यूथपति अन्य जो, यथास्थान हो निर्निमेष
देखते राम का जित-सरोज-मुख-श्याम-देश ।

* * *

है अविनाश; उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल ।
स्थिर राघवेंद्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण -जय-भय;
जो नहीं हुआ आज तक हृदय रिपु-दम्य-श्रान्त,
एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराकान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता समुद्यत हो हार -हार ।

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का-प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का-नयनों से गोपन-प्रिय सम्भाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान -पतन,
काँपते हुए किसलय-झरते पराग -समुदय,
गाते खग-नव-जीवन-परिचय -तरु मलय-बलय,
ज्योति प्रपात स्वर्गीय -ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी-नयन-कमनीय -प्रथम कम्पन तुरीय ।
सिहरा तन, क्षण-भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्बार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन सम के अधर
फिर विश्व-विजय-भावना हृदय में आयी भर
वे आये याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत-
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,
देखते राम, जल रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताड़का, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रण, दूषण, खर ;
फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण में देखी जो
आच्छादित किये हुये सम्मुख समग्र नभ को,
ज्योतिर्मय अस्त्र सकल बुझ-बुझकर हुए क्षीण,
पा महानिलय उस तन में क्षण में हुए लीन ;
लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन -
खिंचे गये दृगों में सीता के राममय नयन ;
फिर सुना -हँस रहा अट्टहास रावण खलखल,
भावित नयनों से सजल से गिरे दो मुक्ता-दल ।

*   *   *

बैठे मारुति देखते राम-चरणारविन्द
युग अस्ति-नास्ति के एक-रूप, गुण-गण अनिंद्य ;
साधना -मध्य भी साम्य-बाम-कर दक्षिण-पद,
दक्षिण-कर-तल पर वाम चरण, कपिवर गद्गद
पा सत्य, सच्चिदानन्दरूप, विश्राम -धाम,
जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम-नाम ।
*   *   *

युग चरणों पर आ पड़े अस्तु वे अश्रु युगल,
देखा कपि ने, चमके नभ में ज्यों तारादल ;
ये नहीं चरण राम के, बने श्यामा के शुभ -
सोहत मध्य में होकर युग या दो कौस्तुभ ;
टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल,
सन्दिग्ध भाव की उठी दृष्टि, देखा अविकल
बैठे वे वहीं कमल-लोचन, पर सजल नयन,
व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल -मुख, निश्चेतन ।
ये अश्रु राम के आते ही मन में विचार
उद्वेल हो उठा शक्ति- खेल- सागर अपार
हो श्वसित पवन -उनचास, पिता-पक्ष से तुमुल,
एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त तरंग -भंग उठते पहाड़,
जल राशि - राशि जल पर चढ़ता खाता पछाड़
तोड़ता बन्ध -प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष ।
शत-वायु-वेग-बल, डुबा अतल में देश-भाव,
जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश
पहुँचा एकादशरुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास ।
रावण-महिमा श्यामा विभावरी -अन्धकार
यह रुद्र राम-पूजन- प्रताप तेज प्रसार ;

उस ओर शक्ति शिव की जो दशकन्ध-पूजित,
इस ओर रुद्र-वन्दन जो रघुनन्दन-कूजित ;
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
लख महानाश शिव अचल हुए क्षण-भर चंचल,
श्यामा के पदतल भारधरण हर मन्द्रस्वर
बोले-सम्बरो देवि, निज तेज, नहीं वानर
यह -नहीं हुआ शृंगार -युग्म -गत, महावीर,
अर्चना राम की मूर्तिमान अक्षय-शरीर
चिर-ब्रह्मचर्य -रत, ये एकादश रुद्र धन्य,
मर्यादा-पुरुषोत्तम के सर्वोत्तम, अनन्य
लीलासहचर दिव्यभावधर इन पर प्रहार
करने पर होगी देवि, तुम्हारी विषम हार ;
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध
झुक जायेगा कपि, निश्चय होगा दूर रोध ।
कह हुए मौन शिव ; पवन-तनय में भर विस्मय
सहसा नभ में अंजना -रूप का हुआ उदय,
बोली माता -'तुमने रवि को जब लिया निगल
तब नहीं था बोध तुम्हें, रहे बालक केवल ;
यह वही भाव कर रहा तुम्हें व्याकुल रह-रह,
यह महाकाश, है जहाँ वास शिव का निर्मल -
पूजते जिन्हें श्रीराम, उसे ग्रसने को चल
क्या नहीं कर रहे तुम अनर्थ ? -सोचो मन में ;
क्या दी आज्ञा ऐसी कुछ श्रीरघुनन्दन ने ?
तुम सेवक हो, छोड़कर धर्म कर रहे कार्य-
क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए कार्य ?'
कपि हुए -नम्र, क्षण में माताछवि हुई लीन,
उतरे धीरे-धीरे गह प्रभु-पद हुए दीन ।

*　　*　　*

राम का विषण्णानन देखते हुए कुछ क्षण,
'हे सखा', विभीषण बोले, आज प्रसन्न वदन
वह नहीं, देखकर जिसे समग्र वीर-वानर-
भल्लूक विगत-श्रम हो पाते जीवन-निर्झर ;
रघुवीर तीर सब वही तूण में हैं रक्षित,
है वही वक्ष, रण-कुशल हस्त, बल वही अमित,
हैं वही सुमित्रानन्दन मेघनाद-जित-रण,
हैं वही भल्लपति, वानरेन्द्र सुग्रीय प्रमन,
तारा-कुमार भी वही महाबल श्वेत धीर
अप्रतिभट वही एक-अर्बुद-सम, महावीर
है वही दक्ष सेना-नायक, है वही समर,
फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव-प्रखर ?
रघुकुल गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ हो रहा जब जय रण !
कितना श्रम हुआ व्यर्थ- आया जब मिलन समय
तुम खींच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय ।
रावण, रावण, लम्पट, खल, कल्मष-गताचार
जिसके हित कहते किया मुझे पाद-प्रहार
बैठा उपवन में देगा दुख सीता को फिर -
कहता रण की जय-कथा पारिषद-दल से घिर-
सुनता वसन्त में उपवन में कल-कूजित पिक
मैं बना किन्तु लंकापति, धिक, राघव, धिक्-धिक् ।

* * *

सब सभा रही निस्तब्ध : राम के स्तिमित नयन
छोड़ते हुए, शीतल प्रकाश देखते विमन,
जैसे ओजस्वी शब्दों का जो था प्रभाव
उससे न उन्हें कुछ चाव, न हो कोई दुराव,
ज्यों हो वे शब्द मात्र- मैत्री की समनुरक्ति,
पर जहाँ गहन भाव के ग्रहण की नहीं शक्ति ।

कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर
बोले रघुमणि -मित्रवर विजय होगी न समर ;
यह नहीं रहा नर-वानर का राक्षस से रण,
उतरीं पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण ;
अन्याय जिधर है उधर शक्ति ! कहते छल-छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुन: ढलके दृगजल,
रुक गया कण्ठ, चमका लोमश-तेज प्रचण्ड,
धँस गया धरा में कपि गह युग पद मसक दण्ड,
स्थिर जाम्बवान - समझते हुए ज्यों समल भाव,
व्याकुल सुग्रीव-हुआ -उर में ज्यों विषम घाव,
निश्चित-सा करते हुए विभीषण कार्य-क्रम,
मौन में रहा यों स्पन्दित वातावरण विषम ।

* * *

निज सहज रूप में संयत हो जानकी -प्राण
बोले -'आया न समझ में यह दैवी विधान ;
रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर -
यह रहा शक्ति का खेल समर शंकर शंकर !
करता मैं योजित बार-बार शर-निकर विराट
हो सकती जिनसे यह संसृति सम्पूर्ण विजित,
जो तेज-पुंज, सृष्टि की रक्षा का विचार
है जिनमें निहित पतनघातक संसृति अपार-
शत-शुद्धि-बोध -सूक्ष्मातिसूक्ष्म मन का विवेक
जिनमें है क्षात्रधर्म का धृत पूर्णाभिषेक,
जो हुए प्रजापतियों के संयम से रक्षित,
वे शर हो गये आज रण में श्रीहत, खंडित !
देखा, है महाशक्ति रावण को लिये अंग,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक,
हत मंत्रपूत शर संवृत करतीं बार-बार,
निष्फल होते लक्ष्य पर क्षिप्र वार पर वार !

विचलित लख कपिदल, क्रुद्ध युद्ध को मैं ज्यों-ज्यों,
झक-झक झलकती वह्नि वामा के दृग त्यों-त्यों,
पश्चात् देखने लगीं मुझे, बंध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त ।
कह हुए भानुकुलभूषण वहाँ मौन क्षण-भर,
बोले विश्वस्त कंठ से जाम्बवान -'रघुवर
विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम करो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर ;
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन !
तब तक लक्ष्मण हैं वाम पार्श्व में हनूमान,
नल, नील और छोटे कपिगण-उनके प्रधान ;
सुग्रीव, विभीषण, अन्य यूथपसति यथासमय
आयेंगे रक्षा हेतु जहाँ भी होगा भय ।'
खिल गयी सभा । उत्तम निश्चय यह, भल्लनाथ ।
कह दिया वृद्ध को मान राम ने झुका माथ ।
हो गये ध्यान में लीन पुन: करते विचार
देखते सकल-तन पुलकित होता बार-बार ।
कुछ समय अनन्तर इन्दीवर निन्दित लोचन
खुल गये, रहा निष्पलक भाव में मज्जित मन ।
बोले आवेग-रहित स्वर से विश्वास -स्थित -
'मात:, दशभुजा, विश्व-ज्योति:, मैं हूँ आश्रित ;
हो विद्ध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित,
जनरंजन-चरण-कमल-तल, धन्य सिंह गर्जित ।
यह, यह मेरा प्रतीक, मात:, समझा इंगित ;

मैं सिंह, इसी भाव से करुँगा अभिनन्दित ।'
कुछ समय स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न,
फिर खोले पलक कमल-ज्योतिर्दल ध्यान -लग्न ;
हैं देख रहे मंत्री, सेनापति, वीरासन
बैठे उमड़ते हुए, राघव का स्मित आनन ।
बोले भावरथ चन्द्र-मुख-निन्दित रामचन्द्र,
'देखो, बन्धुवर सामने स्थित जो यह भूधर
शोभित शत-हरित -गुल्म-तृण से श्यामल सुन्दर
पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द -विन्दु ;
गरजता चरण-प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिन्धु ;
दशदिक - समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर ;
लख महाभाव -मंगल पदतल धँस रहा गर्व-
मानव के मन का असुर मन्द, हो रहा खर्व'
फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
बोले प्रियवर स्वर से अन्तर सींचते हुए -
'चाहिये हमें एक सौ आठ, कपि, इन्दीवर
कम-से-कम अधिक और हों, अधिक और सुन्दर
जाओ देवीदह, उषःकाल होते सत्वर
तोड़ो, लाओ वे कमल, लौटकर लड़ो समर ।'
अवगत हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व स्थान,
प्रभु-पद-रज सिर धर चले हर्ष भर हनूमान ।
राघव ने विदा किया सबको जानकर समय,
सब चले सदय राम की सोचते हुए विजय ।

* * *

निशि हुई विगत : नभ के ललाट पर प्रथम किरण
फूटी, रघुनन्दन के दृग महिमा -ज्योति - हिरण ;
है नहीं शरासन आज हस्त -तूणीर -स्कन्ध,
वह नहीं सोहता निविड़-जटा दृढ़ कुमुट-बन्ध ;
सुन पड़ता सिंहनाद -रण कोलाहल अपार

उमड़ता नहीं मन, स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार ;
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दशभुजा नाम,
मन करते हुए मनन नामों के गुणग्राम ;
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण,
गहन-से गहनतर होने लगा समाराधन ।
क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस ;
कर-जप पूरा कर एक चढ़ाते इन्दीवर,
निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर ।
चढ़ षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन,
प्रति जप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण ;
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर,
जप के स्वर लगा काँपने थर-थर अम्बर ;
दो दिन -निष्पद एक आसन पर रहे राम,
अर्पित करते इन्दीवर, जपते हुए नाम ;
आठवाँ दिवस, मन ध्यान-युक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा -हरि-शंकर का स्तर
हो गया विजित ब्रह्मांड पूर्ण, देवता स्तब्ध,
हो गये दग्ध जीवन के तप के समारब्ध,
रह गया एक इन्दीवार, मन देखता -पार
प्राय: करने को हुआ दुर्ग जो सहस्त्रार,
द्विप्रहर रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपाकर
हँस उठा ले गयी पूजा का प्रिय इन्दीवार ।
यह अंतिम जप, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल,
कुछ लगा न हाथ हुआ सहसा स्थिर चंचल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल,
देखा, वह रिक्त स्थान, यह जप का पूर्ण समय
आसन छोड़ना असिद्धि भर गये नयनद्वय : -

‘धिक साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध ।
जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका ।’
यह एक और मन रहा राम का जो न थका ;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय
कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय,
बुद्धि के दुर्ग पहुँचा, विद्युत -गति हतचिंतन
राम में जगी स्मृति, हुए सजग पा भाव प्रमन ।
‘यह है उपाय’ कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन-
‘कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन !
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात: एक नयन ।’
कहकर देखा तूणीर ब्रह्मशर रहा झलक,
ले लिया हस्त, लक-लक करता वह महाफलक ;
ले अस्त्र वाम कर, दक्षिण कर दक्षिण लोचन
ले अर्पित करने उद्यत हो गये सुमन ।
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय,
काँपा ब्रह्मांड, हुआ देवी का त्वरित उदय : -
* * *

‘साधु-साधु , साधक धीर धर्म-धन धन्य राम !
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम ।
देखा राम ने-सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वाम पद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर,
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्र-सज्जित,
मन्द स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण गणेश, कार्तिक बाँये रण-रंग राग,
मस्तक पर शंकरा पदपद्मों पर श्रद्धाभर
श्री राघव हुए प्रणत मन्दस्वर वन्दन कर ।
‘होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन !
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन ।
***

‘तुलसीदास’

1.4. तुलसीदास :

निराला के साहित्य में राष्ट्रीय प्रेरणा का उत्स अगर ‘राम की शक्ति पूजा’ है तो स्वाभिमान का केंद्र ‘तुलसीदास’ में है । छायावादी युग में यह कविता अपने विशेष तेवर के कारण काफी महत्व रखती है । निराला राष्ट्र की पराधीनता (उनके समय में अंग्रेजी राज) से त्रस्त हैं । परंतु इतिहास में मुसलमानी शासन भी पराधीनता की करुण दास्तान है । एक -एक कर सारे इलाके पराधीन हो जाते हैं । इस्लामी शासन के नीचे उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम और फिर केंद्र हर तरफ त्राहि-त्राहि मच जाती है । ऐसे में कवि ने एक लोकनायक को तलाशा है । वह पराधीन भारत के समय स्वाभिमान का शंखनाद करता है । इसके लिए तुलसीदास से बढ़ कर आदर्श, भव्य और सशक्त नायक नहीं मिलता । उन्हीं को समर्पित है यह लंबी कविता । यह प्रसिद्ध आख्यानात्मक कविता है ।

1.4.1 कथानक :

सदियों की स्वाधीनता का सूर्य क्रमश: अस्त होने लगा । कोशल -बिहार में पराधीनता छा गई । इसके बाद बुंदेलखंड, कालिंजर, राजपूती इलाका पराधीन हुआ । कुल मिला कर दिल्ली और यमुना के तट के प्रदेश समृद्धि लहर में हैं । उन पर कुदृष्टि पड़ी । ऐसे दुर्दिन में तुलसीदास का चित्रकूट गिरि पर आविर्भाव हुआ । वे समाज की दलित दशा देखते हैं । युवावस्था का गहरा प्रभाव है । पर राष्ट्र में सभी वर्ण टूट चुके हैं । उनके दायित्वों का वे निर्वाह नहीं करते । समाज पराधीनता में पड़ कर बंध गया है ।

देश में दीनों की दशा तो अत्यंत करुण है । पराधीनता में और भी कठिन स्थिति है । ऐसी कठिन हालत में प्राणसंगिनी रत्नावली मिलती है । वह साथ निभाने आयी है । इसमें कवि धन्य हो जाता है । कवि हनुमतधारा पर आ जाते हैं । वहाँ वे जानकी कुंड, स्फटिकशिला, अनुसूया आश्रम, भरतकूप आदि के दर्शन करते हैं । रत्नावली बंध जाती है । एक दिन वह पीहर जाने को तत्पर हो उठी । पर तुलसी भेजने में तत्पर नहीं । भाई लेने आता है । तुलसी की अनुपस्थिति में चलने की बात करता है । चली जाती है । तुलसी लौट कर घर सूना देखते हैं ।

वे ससुराल जाते हैं । रत्नावली के घर पर पहले स्वागत होता है । बाद में व्यंग से अंग-अंग जल गया । अब रत्नावली उन्हें अनाहूत आया देख विचलित हो उठती है । शर्मिन्दगी महसूस करती है ।

कटुवचन कह तिरस्कार कर देती है । तब शारदा के दर्शन होते हैं । आज मानो बंद कली खुल गई है । वे सचेत हो उठते हैं । लगता है कोई कह रहा है -

> ''जागो जागो आया प्रभात
> बीती वह बीती अंध रात ।''

देश का उज्ज्वल भविष्य प्रतिभात होता है । कवि देश और काल के शर में बिंध कर जाग उठता है । कवि अपनी करुणा देकर विश्व को देदीप्यमान करने सचेत हो उंता है । सामने वह मूर्ति उभरती है । वह उससे प्रकाश ले कर आगे बढ़ने का संकल्प तो लेता है । हृदय में वह सुधार मूर्ति धारण कर लेता है । बाहर आगे बढ़ने निकल आता है ।

1.4.2 काव्य दृष्टि :

निराला ने तुलसीदास के नाटकीय उत्कर्ष के लिए रत्नावली के अत्यंत सधे हुए कथन रखे हैं । तुलसीदास जैसे व्यक्तित्व का उभार देश की दुर्दशा के बीच दिखाते हैं । अत: क्षेत्रवारी पराधीनता, जीवन के लिए मूल्यों की पराधीनता आदि स्थितियों से संकेत किये हैं । इस प्रकार निराला ने प्रबंध - कौशल का परिचय दिया है । संस्कृति के प्रति उदासीनता का संकेत देकर नारी की उसमें महती भूमिका का उल्लेख किया । विवाह का सांस्कृतिक महत्व स्पष्ट कर रहे हैं । तभी जीवन को ऊर्ध्वगति प्राप्त होती है ।

भाषा की दृष्टि से निराला ने लंबी कविताओं में संस्कृत -निष्ठ समस्त शैली को अपनाया । हालांकि पहले की लंबी कविताओं की तरह लंबे-लंबे समस्त पदों का प्रयोग नहीं किया । फिर भी भाषा में कवि ने परिनिष्ठित शैली का ही प्रयोग किया है ।

निराला की इस रचना में जीवन के लिए एक विशेष दिशा और दृष्टि है । भौतिकवाद एवं भोगवाद का जीवन में महत्व इतना बढ़ गया कि बाकी के मूल्य तिरोहित हो जाते हैं । पत्नी का साथ केवल भौतिक ही नहीं होता । निराला इसे उच्च स्तर पर उठाने हेतु रत्नावली का शक्तिपूर्ण प्रयोग कर रहे हैं । भौतिकवादी सुख एवं वासना से उठकर सृजनात्मक और रचनात्मक सहभागिनी के रूप में ज्यादा महत्वपूर्ण है । समाज के नवगठन को यह दृष्टि ज्यादा बल प्रदान करती है । यहाँ पर वैयक्तिक तनाव का जो रूप 'तुलसीदास' में प्रस्तुत किया, छायावाद में कवि की वैयक्तिक भावना का प्रतीकात्मक रूप स्पष्ट होता है । यह अंतर्द्वन्द परिवार और व्यक्ति के आरंभ में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है । इसीमें उसे दिशा मिलती है । अपनी मानसिक संकीर्णता से उभरने का काम रत्नावली जैसे पात्र के माध्यम से किया है । निराला समाज सचेतन कवि हैं । साथ-साथ कवि को सामाजिक दायित्व से ही नहीं बांधा, उसकी

प्रतिबद्धता भी सुनिश्चित की गई है । निराला का यह आत्मान्वेषण उन्हें आन्तरिक अंतर्द्वन्द से बाहर निकालता है । आत्मसाक्षात्कार के स्तर पर ले कर उन्हें गति करने की चेष्टा दे रहा है । निराला की यह आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया अनूठी है । उन्होंने 'तुलसीदास' के माध्यम से पराधीन भारत में भौतिकवाद से आगे बढ़कर सामाजिक प्रतिबद्धता की, सृजनशील व्यक्ति की बात कही है । कवि की यह विकासशील धारा है ।

इस लंबी (लगभग 100 छंदों में) आख्यानात्मक कविता में कवि ने अभिनव प्रयोग किया है । इतिवृत्तात्मक परंपरा से हट कर कवि ने इतिहास का सांकेतिक प्रयोग किया है । 'एक था राजा' वाली शैली में कहीं कविता का प्रवाह नहीं मिलता । तुलसीदास का यह प्रसंग परिचित होते हुए भी कवि ने इसमें अभिनव भावदृष्टि संश्लिष्ट कर अद्यतन बनाया है । निराला का यह प्रयोग आगे चल कर कथानकों के माध्यम से समकालीन सार्थकता का वाहक बनता है । अनेक प्रसंग लेकर कवि ने सामाजिक-सांस्कृतिक -राजनैतिक स्थितियों पर काव्यात्मक दृष्टि से विचार किया । प्रसंगानुकूल भाषा के तेवर ग्रहण के कारण वह कविता विशेष महत्व की बन जाती है ।

1.4.3. कुछ कठिन शब्द :

शफरी = अलकें । पृथु = बड़ा । निरुमिता = जिसकी उपमा नहीं । अचपल = स्थिर । अमला = शुद्ध । बिना दाम = बिना मूल्य । अनल -प्रतिमा = आग की मूर्ति । रशना = जीभ । सुवादित - स्वर = सुन्दर बजाया स्वर । धूमायमान = धुंवा की तरह घुसता । ज्ञानालोचित = ज्ञानसे खुले । प्राणाशय = प्राणों का ठिकाना । शोध = जांच । ज्योतिर्मय = प्रकाशपूर्ण । दुर्धर्ष = रात दिन । निश्चेतन = अचेत । अधुना = अब । शैशवकाश = तनिक अवकाश । फिर कर = मुड़ कर । सुधार = सुन्दर । प्राची दिगन्त -उर में पुष्फल -रवि-रेखा = प्राची में भरपूर सूर्य किरण

1.4.4. अभ्यास प्रश्न :

व्याख्या के अंश :

1. बिखरी छूटी शफरी ...... ध्यान मग्न ।
2. देखा शारदा नील-वसना ...... जिस पर श्री ।
3. होगा फिर से समर ...... माया कर ।
4. देश-काल के शर से बिंध कर ...... रागिनी सकल सोएँगी ।
5. जागी विश्वाश्रम महिमाधर ...... पुष्कल रवि रेखा ।

आलोचनात्मक प्रश्न :

1. 'तुलसीदास' कविता का कथ्य अपने शब्दों में दीजिए ।
2. 'तुलसीदास' कविता की लंबी कविता के रूप में समीक्षा कीजिए ।
3. 'तुलसीदास' के काव्य सौष्ठव पर प्रकाश डालिए ।
4. 'तुलसीदास' की भाषा और छंद पर विचार कीजिए ।
5. 'तुलसीदास' में वर्णित आत्मद्वंद पर प्रकाश डालिए ।

संक्षिप्त उत्तरमूलक प्रश्न :

i) रत्नावली के भावों पर प्रकाश डालिए ।

ii) तुलसीदास की प्रतिक्रिया का चित्रण अपने शब्दों में कीजिए ।

iii) तुलसीदास क्या निश्चय कर लेते हैं ?

iv) रत्नावली का वर्णन कवि ने किस प्रकार किया ?

अतिलघूत्तरी प्रश्न :

क) ''जागी योगिनी अरुप -लग्न'' किसके लिए कहा गया ?

ख) 'आनन्द रहा, मिट गए द्वंद' किसे संबोधित है ?

ग) 'देश काल शर से बिंध कर' कौन बिंधा है ?

घ) 'देखा सामने मूर्ति' -किसकी मूर्ति देखी ?

ङ) 'निशि वासर' अर्थ लिखिए ।

च) 'फिर कर' अर्थ लिखिए ।

छ) 'लेता मैं जा कर जीवन भर का बहने का' इस पंक्ति में 'मैं' कितके लिए है ?

ज) तुलसीदास की पत्नी का नाम क्या है ?

झ) पत्नी को आकर कौन पीहर ले गया ?

ञ) शरदा को किस रंग के वस्त्र में देखा ?

1.5 उपयोगी ग्रंथ :

1. प्रसाद-निराला-अज्ञेय : डॉ. राम स्वरूप चतुर्वेदी ।

2. कवि कर्म और काव्य : डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ।

3. छायावाद : उत्थान -पतन-पुनर्मूल्यांकन - डॉ. रमेश कुंतल मेघ ।

4. आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान : डॉ. केदारनाथ सिंह ।

5. 'निराला' मूल्यांकन : सं. इंद्रनाथ मदान ।

6. प्रसाद काव्य - डा. प्रेमशंकर ।

तुलसीदास

बिखरी छूटी शफरी - अलकें,
निष्णात नयन - नीरज -पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता,
नि:सम्बल केवल ध्यान -मग्न,

जागी योगिनी अरुप - लग्न,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता ।

कुछ समय अनन्तर, स्थित रहकर,
स्वर्गीयाभा वह त्वरित प्रखर
स्वर में झर-झर जीवन भरकर ज्यों बोली,
अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
जागी जल पर कमला, अमला मति डोली -

''धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल - धर्म धूत ;
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए !
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ - हाड़ चाम !
कैसी शिक्षा, कैसी विराम पर आए !''

जागा, जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा, वह न थी, अनल-प्रतिमा वह ;
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान

हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह ।

देखा शारदा नील -वसना,
है सम्मुख स्वयं सृष्टि -रशना,
जीवन -समीर-शुचि -नि:श्वासना, वरदात्री,
बीती वह स्वयं सुवादित स्वर,
फूटी तर अमृताक्षर -निर्झर,
यह विश्व हंस, हैं चरण सुधर जिस पर श्री ।

दृष्टि से भारती की वैध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर ;
केवल अम्बर -केवल अम्बर फिर देखा ;
धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि -ताराहर,
सूक्ष्मता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा ।

चमकी तब तक तारा नवीन,
द्युति नील-नील, जिसमें विलीन
हो गई भारती, रूप -क्षीण महिमा अब ;
आभा भी क्रमश: हुई मन्द,
निस्तब्ध व्योम -गति, रहित छन्द;
आनन्द रहा, मिट गये द्वन्द्व, बन्धन सब ।

थे मुँदे नयन, ज्ञानी-मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित;
अपनी असीमता में अवसित प्राणाशय;
जिस कलिका में कवि रहा बन्द,
वह आज उसी में खुली मन्द,
भारती रूप में सुरभि - छन्द निश्रय ।

जब आया फिर देहात्म -बोध,
बाहर चलने का हुआ शोध,
रह निर्विरोध, गति हुई रोध -प्रतिकूला,
खोलती मृदुल दल बन्द सकल
गुदगुदा विपुल धारा अविचल
बह चली सुरभि की ज्यों उत्कल, निःशूला -
बाजीं बहती लहरें कलकल,
जागे भावाकुल शब्दोच्छल,
गूँजा जग का कानन - मंडल, पर्वत -तल;
सूना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित दूना,
आसुर भावों से जो भूना, था निश्चल ।

''जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अन्ध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल ।
बाँधी, बाँधी किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन;
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल ।

''होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर;
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवन-भर;
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल;
जय, इधर ईश हैं उधर सबल माया -कर ।

''हो रहे आज जो खिन्न -खिन्न
छुट -छुटकर दल से भिन्न-भिन्न

यह अकल -कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी,
रविकर ज्यों बिन्दु -बिन्दु जीवन
संचित कर करता है वर्षण,
लहरा भव-पादप, मर्षण -न मोड़ेगी ।

'देश -काल के शर से बिंध कर
यह जागा कवि अशेष -छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी;
निश्चेतन, निज तन मिला विकल,
छलका शत-शत कल्मष के छल
बहतीं जो, वे रागिनी समल सोएँगी ।

''तम के अमार्ज्य रे तार -तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश -धार;
जग - वीणा के स्वर के बाहर रे, जागो,
इस कर अपने कारुणिक प्राण
कर लो समक्ष देदीप्यमान -
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर माँगो ।''

क्या हुआ कहाँ, कुछ नहीं सुना,
कवि ने निज मन भाव में गुना,
साधना जगी केवल अधुना प्राणों की,
देखा सामने, मूर्ति छल-छल
नयनों में छलक रही अचपल,
उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की ।

जगमग जीवन का अन्त्य भाष -
''जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
मेरा उससे गृह के भीतर;

देखूँगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं जो वर जीवन -भर बहने का ।''

चल मन्द चरण आये बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुधर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा -
संकुचित खोलती श्वेत पटल,
बदली, कमला तिरती सुख जल,
प्राची-दिगन्त -उर में पुष्कल रवि -रेखा ॥

***

UNIT - II

1. रामधारी सिंह दिनकर

उर्वशी - तीसरा सर्ग

2. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

i)असाध्य वीणा

ii)बावरा अहेरी

इकाई -II (रामधारी सिंह दिनकर : उर्वशी - तीसरा सर्ग ;
स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' –असाध्य वीणा ; बावरा अहेरी)

विषय सूची

2.1 दिनकर : उर्वशी (तृतीय सर्ग)

2.1.1 कवि परिचय

2.1.2 उर्वशी का कथानक

2.1.3 तीसरे अंक का कथानक

2.1.4 कुछ शब्दार्थ

2.1.5 उर्वशी का काव्य सौन्दर्य

2.1.6 अभ्यास प्रश्न

2.1.7 उपयोगी ग्रंथ

2.2 अज्ञेय : असाध्य वीणा

2.2.1 जीवन परिचय

2.2.2 कृतियाँ

2.2.3 प्रयोगवादी कविता और अज्ञेय

2.2.4 असाध्य वीणा का कथासार

2.2.5 काव्यात्मक गुण

2.2.6 शब्दार्थ

2.2.7 अभ्यास प्रश्न

2.2.8 उपयोगी ग्रंथ

2.3 बावरा अहेरी

2.3.1 कविता का सार मर्म

2.3.2 काव्य सौन्दर्य

2.3.3 शब्दार्थ

2.3.4 अभ्यास प्रश्न

2.3.5 सहायक ग्रंथ

इकाई -II

2.1 दिनकर : उर्वशी (तृतीय सर्ग)

2.1.1 कवि परिचय (1908)

उर्वशी महाकाव्य के रचयिता रामधारी सिंह 'दिनकर' हैं । उनका जन्म किसान के घर में हुआ । सिमरियाघाट (जि. मुगेर) में ही प्रारंभिक शिक्षा हुई । बाद में मुकामाघाट से इंटर पास किया । पटना से वे बी.ए.(आनर्स) कर अध्यापक बन गए । कुछ समय सब रजिस्ट्रर बनाया गया । 1947 ई. में युद्ध प्रचार विभाग में हिंदी डायरेक्टर रहे । कुछ दिन मुजफ्फरपुर में एक प्राइवेट कालेज में हिंदी अध्यापक रहे । दिनकर को इनकी काव्य प्रतिभा के सम्मान स्वरूप राज्यसभा का सदस्य कांग्रेस द्वारा तीन बार मनोनीत किया गया । इसके अलावा उन्हें 'संस्कृति के चार अध्याय' पर साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया । बाद में भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार से सम्मानित हुए । भारत सरकार ने उन्हें मर्यादाजनक 'पद्मभूषण' उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया । दिनकरजी ने कुछ समय तक भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को गौरवान्वित किया । कुछ समय भारत सरकार के गृहविभाग के हिंदी सलाहकार भी रहे ।

दिनकरजी मद्रास गए थे । वहाँ से वे भगवान बालाजी के दर्शन करने तिरुपति गए । लौटे तो 24 अप्रेल 1974 को मद्रास में ही हृदयगति रुकने से देहावसन हो गया ।

दिनकर को 'राष्ट्रकवि' कहा गया है । वास्तव में राष्ट्रीय चेतना उनके साहित्य का मुख्य विषय रहा है । गांधी से लेकर लेनिन तक और दयानन्द -भगतसिंह से लेकर राजाराममोहन राय और एनीबेसेंट के दर्शन ने उन्हें खूब प्रभावित किया । यही कारण है कि ओज और प्रखरता का रूप कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा में मिलता है । उधर कोमल और प्रेमभाव रेणुका, रसवन्ती तथा उर्वशी के पन्नों में समाया है । गहन चिंतन-अध्ययन संस्कृति के चार अध्याय में समेटा है । इस प्रकार दिनरकर ने गद्य-काव्य मिला कर लगभग 50 ग्रंथों की रचना की है । जिनके अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुए हैं ।

दिनकर भारतीय काव्यजगत में मानवता के पुजारी, देश-भक्ति के मूर्तिमान रूप और प्रेम भाव के व्याख्याता के रूप में अतुलनीय हैं । उनके काव्य जगत में विविध भावों का विन्यास हुआ है । जो किसी सीमा या दायरे में बांधा नहीं जा सकता । राष्ट्रीय स्वाभिमान के जीते जागते रूप दिनकर को सारे देश का स्नेह और आदर मिला था । इसी कारण वे सदा अजातशत्रु बने रहे । अपने सारे विविध भावों

के बावजूद उनका राष्ट्रकवि का रूप अंत तक अक्षुण्ण रहा । युद्धों का संहार देखकर उनका युद्ध विरोधी मनोभाव भी सदा छाया रहा । परंतु इस यात्रा का अंतिम मोड़ प्रेम, स्नेह, मिलन, बन्धुत्व एवं नैकट्य को लेकर आता है । इसमें भी दिनकर ने अत्यंत गहरे भाव का परिचय दिया है ।

2.1.2. उर्वशी का कथानक :

'उर्वशी' काव्य साँचा पांच अंकों में फैला हुआ है । प्रागैतिहासकालीन पुरुरवा और उर्वशी का प्रेमाख्यान इस काव्य का मुख्य विषय है ।

काव्य का प्रारंभ सूत्रधार और नटी के आपसी संवाद से होता है । इस रात के समय चांदनी फैली हुई है । प्रतिष्ठानपुर राजधानी है और स्थान मनोरम उद्यान है । यहाँ चंद्र किरणों से सारी धरती मादकतापूर्ण लग रही है । आकाश में नूपुर ध्वनि सुनाई पड़ रही है । कोई अप्सरा नीचे उतर रही है । नटी उन्हें फूलों की सखियाँ कहती है । विधु की प्रेयसियाँ लग रही हैं । पर सूत्रधार नटी से बता रहा है कि ये अभूक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ हैं, कामासक्त मन की कामनाएँ हैं । धरती पर प्रेम का स्पर्श पाने उतर रही हैं । इनमें तीन अप्सरायें -सहजन्य, रंभा और मेनका पृथ्वी पर उतरी हैं । इस बीच सूत्रधर और नटी पेड़ की छाया में जाकर अदृश्य हो गई हैं । अप्सरायें गाती और आनन्द मना रही हैं ।

मेनका और रंभा उर्वशी की प्रेम कथा बताती है । कुबेर के यहाँ से लौटते समय एक राक्षस ने झपटा । तभी राजा पुरुरवा ने उसे बाहुबल से मुक्त करा लिया । अब मेनका राजा के प्रेम में पड़ जाती है । राजा मेनका के सौन्दर्य पर मुग्ध हो विरह विकल होता है ।

प्रतिष्ठानपुर के राजमहल में औशीनरी चर्चा कर रही थी । पता चला कि पति महाराज पुरुरवा से मिलने मेनका आयी थी । उसके साथ कहीं गए हैं । सखी रानी को धीरज बंधाती है । पुरुष प्रकृति पर टिप्पणी करती है । राजा ने चर के हाथ संदेश भेजा है दिव्य एल वंश चलाने ईश्वर आराधना कर लौटूँगा, तुम भी पुत्र की इच्छा कर प्रार्थना करती रहना ।

2.1.3 तीसरे अंक का कथानक :

गंधमार्दन पर्वत पर उर्वशी एवं पुरुरवा प्रेम चर्चा कर रहे हैं । उर्वशी याद कर रही है कि स्वर्ग में सदा उसे ही ध्यान में रखती । इसी तरह पुरुरवा भी उसके बिना विकल रहा । मन में आया कि इंद्र से उर्वशी मांग लें । परंतु यह भीख क्षत्रियोचित नहीं लगी । इसके अलावा भीख मांगने से प्रेम नहीं मिल सकता । वह प्रतीक्षा करता रहा कि उर्वशी खिंच कर आयेगी । मगर उर्वशी सोचती है कि विक्रमी बल से जीत कर लाते हैं तो स्त्री को एक आनन्द मिलता है, इसमें वह नहीं । जबकि पुरुरवा इस से सहमत

नहीं, वह प्रेम की आंतरिक गहराई तक जाने की बात कहता है । इतना ही नहीं वह देह के सौन्दर्य से हट कर मन की ओर सोच रहा है तो सारी सृष्टि में उसी का सौन्दर्य दिखता है । परंतु पुरुरवा प्रेम की व्यापकता के साथ उसे छोड़ आकाश में नहीं विचरण कर सकता । उर्वशी राजा में देवत्व की चाह देखकर घबरा जाती है । क्योंकि वहाँ शीतलता है । वह उत्तप्त रुधिर की ओर आकर्षित है । अत: पुरुरवा में देवत्व के साथ मनुजत्व को भी जगा रही है । वह कहती है कि अगर उसे आकर्षित करना है तो मनुज भी देवत्व प्राप्त कर लेगा । परंतु राजा बुद्धि से विचार कर रहा है । जब कि उर्वशी बुद्धि को हेय मान रही है । रक्त को बुद्धि से बली कहती है । ज्ञानी भी मानती है । केवल बुद्धि निष्प्राण होती है । कलाकार का हृदय तो रुधिर से ही हिलोरें लेता है ।

पुरुरवा रक्त को बली मानता है । पर रुधिर सब कुछ नहीं । देह धर्म से ऊपर उठकर अंतरात्मा तक जाने की बात कहता है । यह प्रेम ऊर्ध्व उन्नति में बाधक बनता है । नीचे खींच लेता है । उर्वशी तो आलिंगन पाश के लिए व्याकुल है । वह अधरों के चुंबन की आकांक्षा कर रही है । जब कि पुरुरवा विराग की बात करता है । वह चौंक उठती है । वह कहती है कि मैं तुम्हारी राह में कहीं वाधक नहीं बनूंगी । मुझे वक्षस्थल पर ऐसे ही सिर रखे रहने दो । मुझे भुजबंद में कसे रहो एवं अधरों पर तीव्र चुंबन देते रहो । वह उद्दीपन रूप में रात का वर्णन कर रही है । भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रेम के नीचे द्वंन्द चलता रहता है । पुरुरवा में देवत्व की कल्पनाएँ हैं तो उर्वशी में उफनते रक्त की तीव्र अकुलाहट उभर रही है । कभी प्रेम तो कभी संन्यास ! प्रेम प्रकृति है । परमेश्वर संन्यास है । मनुष्य को सिखाया है कि एक व्यक्ति में दोनों एक साथ नहीं रह सकते ।

तब उर्वशी पूछ रही है - ईश्वर और प्रकृति दो हैं, दोनों एक दूसरे के प्रतिबल हैं ? शत्रु हैं ? काफी चर्चा के बाद वह समाधान रखते हुए कहती है - कि प्रकृति और संन्यास में अभेद है । परंतु पुरुरवा के लिए उर्वशी रहस्यपूर्ण ही रहती है । मन यही मानता है कि उर्वशी के साथ उसका संबंध जन्म-जन्मान्तर का है । वह सोचता है कि जहाँ वह जायेगी, सुगंध के पीछे भौंरे की तरह स्वयं खिंचा हुआ चला जायेगा ।

इसी तरह प्रेम चर्चा करते हुए दोनों को साथ-साथ रहते एक वर्ष की अवधि बीत जाती है । राजा उसे याद कर विह्वल हो उठता है । जाने से पहले वह लता, फूलों की डाल और पर्वत के प्रकाश तथा फैली हरियाली से जी भर मिल लेना चाहता है । जिसमें सर्वत्र प्रिया समायी है ।

2.1.4. कुछ शब्दार्थ :

सितासित = काले - गोर । अयशमूल = अपयश के कारण । शमित -वन्हि = शांत आग पृच्छा = इच्छा । वर्तिका-सी = बत्ती की तरह । उड्डीन = उड़ने । प्रभंजन = वज्र स्यन्दन = रथ । तल्प =बिछौने । किल्विष = पाप । मणि -कुट्टिम = मणि वगैरह । घूर्णिचक्र = तूफान । अशब्दित = मौन । अधित्यका = घाटी । दुकूल = चादर । विकच = सुन्दर । स्यात् = शायद । उडुओं = तारागण । अलम = यथेष्ट । अशनि आघात = बिजली की चोट । समुद्भूत = उत्पन्न । स्रप्त = सुप्त

2.1.5 'उर्वशी' का काव्य सौन्दर्य :

आधुनिक हिंदी साहित्य में महाकाव्य परंपरा क्रमश: विलुप्त होती गई । छायावादी युग के बाद यह ह्रास तीव्र होता गया । परंतु दिनकर इसके व्यतिक्रम रहे हैं । उन्होंने महाकाव्य और अनेक खंडकाव्य दोनों की रचना की है ।

'उर्वशी' का नायक पुरुरवा है । इसमें उदात्त गुण वर्तमान हैं । वह उच्चकुल या राजकुल में उत्पन्न है । वह अत्यंत वीर है । नायिका को राक्षस के चंगुल से युद्ध कर मुक्त करने में समर्थ है । अमित सौन्दर्य का अधिकारी है । तभी उर्वशी समर्पण कर देती है ।

इस काव्य का मुख्य रस श्रृंगार है । समूचे काव्य में यह फैला है । अंत में नायक संन्यास लेता है ।

मुख्यत: पूरा काव्य संवाद शैली में रचा गया है । पुरुरवा और उर्वशी के बीच कथोपकथन से ही इसके कथानक को गति मिलती है । चरित्र चित्रण भी दिनकर ने भावोद्गार के माध्यम से किया है । उर्वशी के प्रेम प्रसंगों में उसकी काम भावना उभर कर आती है । जबकि पुरुरवा का भाव प्रदर्शन अपने विशेष दृष्टिकोण का परिचायक है । इस प्रकार पूरे काव्य में भावाभिव्यंजन ही प्रमुख रहा है ।

इसमें सीमित पात्र और उनकी सीमित चेष्टाओं के कारण विस्तृत भावभूमि की गुंजाइश नहीं है ।

प्रकृति गुंजन- इस काव्य में प्रकृति की संगीतमयी स्थिति के दर्शन होते हैं । नाना ध्वनि में अनुरणात्मक स्वर सुनाई देता है ।

''शांति, शांति सब ओर,
किन्तु यह क्वणन -क्वणन स्वर कैसा ?
अतल व्योम उर में ये कैसे
नूपुर झनक रहे हैं ।''

'मेघ मंद्र डुग -डुग ध्वनि
जल धारा में घट भरने की ।''

''झलमल सरित सलिल
यह ऊषा की लाली से ।
शस्यों पर बिछली बिछली,
आभा वह रजत किरण की ।''

यहाँ पर प्रकृति का जीवंत, मनोरम चित्र उपस्थित हुआ है । कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों, पर्वत, मैदान, कुंज, पेड़-पौधे, सागर, झील, आकाश, मेघ, बिजली आदि के अगणित चित्र लिये हैं । कवि कल्पना कर उपमा देते हुए उनका मनोरम चित्र प्रस्तुत कर रहा है । इसमें प्रकृति के विविध व्यापार विविध स्थलों पर चित्रित हो रहे हैं ।

कवि ने प्रकृति के चेतन रूप पर विशेष ध्यान दिया है । जहाँ पर वे उसकी गंध, स्पर्श और रंग संबंधी प्रभाव भूमि से पूरी तरह आक्रांत हैं ।

प्रकृति मानव के सुख में सुखी दिखायी है, दुःख में वह दुःखी दिखती है ।

कवि प्रकृति को मानवी रूप देकर उसे बार-बार विभिन्न व्यापारों का जीवन पर आरोप करते हैं । प्रकृति के सभी रूपों में यह मानवीकरण का रूप उपलब्ध हो जाता है ।

''जब से आयी
धरती पर फूल अधिक खिलते हैं ''

यह प्रकृति मानवी रूप लेकर प्रभाव डाल रही है । ऐसे अगणित उदाहरण उपलब्ध हैं ।

कवि ने प्रकृति चित्रण में अलंकारों का खुल कर प्रयोग किया है । उपमा का भंडार भरा है ।

''यह शिला -सा वक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजायें ।''

रूपक के लिए यह उदाहरण समीचीन होगा :

मुख- सरोज मुस्कान बिना आभाविहीन लगता है ।

दिनकर ने वक्ष के लिए शिला का प्रतीक चुना है । जटाओं के लिए नागिन, मधुरस के लिए चंद्रमा का प्रतीक बार-बार प्रयोग हुआ है ।

कवि को प्रकृति में रहस्यानुभूति हो रही है । इस तीसरे सर्ग में बार-बार यह आया है ।

''ये किरणें, ये फूल, किन्तु अंतिम सोपान नहीं

उठना होगा बहुत दूर, ऊपर इनके तारों पर''

यहाँ रहस्यमय प्रकृति के प्रति कवि की उत्सुकता व्यक्त हो रही है ।

इसी कारण कवि सौन्दर्य चर्चा के समय व्यापक फलक पर उतर आता है । यहाँ पर असीम तक विस्तार हो रहा है । कवि के इस दृश्य को

''सातों अम्बर तक उड़ता है, रूपसी नारी का स्वर्णांचल''

इस प्रकार सौन्दर्य की व्यापकता की कोई सीमा नहीं रह पाती ।

कवि ने उर्वशी के रूप सौन्दर्य की मनोरम छवि प्रस्तुत कर उसे 'विश्वप्रिया' के रूप में दिखाया है । यह गीति-नाट्य अनुपम कृति है इसमें प्रेम और सौन्दर्य की अनूठी व्याख्या हुई है ।

कवि ने उर्वशी और पुरुरवा के माध्यम से सनातन मानव और सनातन नारी की शाश्वत काम भावना को अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है । यह वर्णन पूरी शालीनता, गरिमा और महिमा के साथ संपन्न हुआ है । व्यक्ति प्रेम को कवि ने उदात्त भूमि पर प्रतिस्थित किया है । काम -दर्शन को साहित्यिक स्तर पर रूपायित करने में दिनकर अद्भुत सफल रहें ।

2.1.6 अभ्यास प्रश्न :

कुछ व्याख्यात्मक प्रसंग :

i) जब से हम तुम मिले ..... गल कर खो जाती है ।

ii) मिल भी गयी उर्वशी यदि ..... कपाट कौन तेरे निमित्त खोलेगा ।

iii) बिद्ध हो जाता सहज ..... नारी उसे मुस्कान से ।

iv) यह तो नर ही है, एक साप ..... कंदर्प ललित भी है ।

v) देह प्रेम की जन्म भूमि है ..... नहीं सीमित है रुधिर त्वचा तत्र ।

vi) तुम पर्वत , मैं लता ..... मूर्छित हो जाऊँगी ।

vii) जब भी तन की परिधि पार कर .....
और फूल यों ही प्रसन्न होकर हँसने लगते हैं ।

viii) भ्रांति नहीं अनुभूति ..... उसका प्रतियोगी प्रतिफल है ।

ix) फलासक्ति दूषित कर देती ..... दूषित और मलिन है ।

x) जहाँ-जहाँ तुम रही, निष्पलक नयनों की आभा में ....
या किराहु जैसे विधु पीछे-पीछे चलता है ।

दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न :

क) उर्वशी में तीसरे अंक के वार्तालापों का सारसंक्षेप दीजिए ।

ख) तीसरे सर्ग के काव्य सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए ।

ग) उर्वशी के प्रेम भाव और सौन्दर्य रूप पर प्रकाश डालिए ।

घ) पुरुरवा ने उर्वशी को किस रूप में लिया है ?

ङ) 'उर्वशी' काव्य में काम भाव का स्वरूप स्पष्ट कीजिए ।

संक्षिप्त उत्तरमूलक प्रश्न :

च) तीसरे सर्ग के आधार पर उर्वशी का चरित्र चित्रण कीजिए ।

छ) तीसरे सर्ग में ' मानवीकरण' के कुछ उदाहरण दीजिए ।

ज) उर्वशी का मानवी रूप स्पष्ट कीजिए ।

झ) पुरुरवा की दैवी भावनाओं पर प्रकाश डालिए ।

ञ) तीसरे सर्ग की कथा की रूपरेखा दीजिए ।

अति संक्षिप्त मूलक प्रश्न :

ट) पर्वत पर उर्वशी एवं पुरुरवा कितने समय तक रहे ?

ठ) पुरुरवा की पत्नी कौन है ?

ड) दोनों किस पर्वत पर रहे ?

ढ) और मिले तुम प्रथम-प्रथम, विद्युत चमक उर्वशी' यहाँ 'तुम' शब्द किसके लिए है ?

ण) ''मैं मानवी नहीं, देवी हूँ ।'' कथन किस का है ?

त) ''मैं मनोदेश की वायु, व्याकुल, चंचल'' कौन पात्र कह रहा है ?

थ) ''मेरी ही थी तपन जिसे फूलों के कुंज भवन में,
जन्म-जन्मान्तर में तुम आलिंगन से हरती आयी हो ।'' कौन कह रहा है ?

द) ''पी लें जी भर पर्वत पर का नीरव प्रकाश
लें सींच हृदय झूमती हुई हरियाली है ।''
यह पंक्ति उर्वशी तीसरे सर्ग में कब कहती है ?

ध) पुरुरवा ने ''विश्वप्रिया'' किसे कहा है ?

न) नारी की मैं कल्पना चरम नर के .... में बसने वाली ।

(खाली स्थान पर उचित शब्द चुनकर रखें ; तन, मन, धन)

2.1.7 कुछ उपयोगी ग्रंथ-

1) हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी ।

2) हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शूक्ल ।

3) कविकर्म और काव्यभाषा : परमानन्द श्रीवास्तव

4) संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर

उर्वशी (तृतीय अंक से)

(गन्धमादन पर्वत पर पुरुरवा और उर्वशी)

पुरुरवा

जब से हम-तुम मिले, न जाने कितने अभिसारों में
रजनी कर श्रृंगार सितासित नभ में घूम चुकी है;
जाने, कितनी बार चन्द्रमा को, बारी-बारी से,
अमा चुरा ले गयी और फिर ज्योत्स्ना ले आयी है ।

जब से हम-तुम मिले, रूप के अगम, फुल्ल कानन में
अनिमिष मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गयी है,
अर्थ नहीं सूझता मुझे अपनी ही विकल गिरा का;
शब्दों से बनती हैं जो मूर्तियाँ, तुम्हारे दृग से
उठनेवाले क्षीर -ज्वार में गलकर खो जाती हैं ।

खड़ा सिहरता रहता मैं आनन्द -विकल उस तक -सा
जिसकी डालों पर प्रसन्न गिलहरियाँ किलक रही हों,
या पत्तों में छिपी हुई कोयल कूजन करती हो ।

उर्वशी

जब से हम-तुम मिले, न जाने, क्या हो गया समय को,
लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत -गह्वार में ।
किन्तु हाय, जब तुम्हें देख मैं सुरपुर को लौटी थी,
यही काल अजगर -समान प्राणों पर बैठ गया था ।
उदित सूर्य नभ से जाने का नाम नहीं लेता था,
कल्प बिताये बिना न हटती थीं वे काल, निशाएँ ।

कामद्रुम -तल पड़ी तड़पती रही तप्त फूलों पर;
पर तुम आये नहीं कभी छिप कर भी सुधि लेने को ।
निष्ठुर बन निश्चिन्त भोगते बैठे रहे महल में
सुख प्रताप का , यश का, जय का, कलियों का, फूलों का ।
मिले, अन्त में,तब जब ललना की मर्याद गँवाकर
स्वर्ग-लोक को छोड़ भूमि पर स्वयं चली मैं आयी ।

पुरुरवा

चिर-कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित, किन्तु, मिलन का,
इसे छोड़ कर और दूसरा कौन पन्थ संभव था ?
उस दिन दुष्ट दनुज के कर से तुम्हें विमोचित करके
और छोड़ कर तुम्हें तुम्हारी सखियों के हाथों में
लौटा जब मैं राज-भवन को, लगा, देह ही केवल
रथ में बैठी हुई किसी विध गृह तक पहुँच गयी है;
छूट गये हैं प्राण उन्हीं उज्वल मेघों के वन में,
जहाँ मिली थीं तुम क्षीरोदधि में लालिमा -लहर सी ।

कई बार चाहा सुरपति से जाकर स्वयं कहूँ मैं,
अब उर्वशी बिना यह जीवन भार हुआ जाता है,
बड़ी कृपा हो उसे आप यदि भूतल पर जाने दें ।

पर मन ने टोका, क्षत्रिय भी भीख माँगते हैं क्या ?
और प्रेम क्या कभी प्राप्त होता है भिक्षाटन से ?
मिल भी गयी उर्वशी यदि तुझ को इन्द्र की कृपा से,
उसका हृदय-कपाट कौन तेरे निमित्त खोलेगा ?

'बाहर साँकल नहीं जिसे तू खोल हृदय पा जाये,
इस मंदिर का द्वार सदा अन्त:पुर से खुलता है ।
और कभी यह सोचा है, जिस सुगन्ध से छक कर

विकल वायु बह रही मत्त होकर त्रिकाल -त्रिभुवन की,
उस दिगन्त-व्यापिनी गन्ध की अव्यय, अमर शिखा को
मर्त्य प्राण की किस निकुंज -वीथी में बाँध धरेगा ?'

इसीलिए, असहाय तड़पता बैठा रहा महल में,
ले कर यह विश्वास, प्रीति मेरी यदि मृषा नहीं है,
मेरे मन का दाह व्योम के नीचे नहीं रुकेगा,
जलद-पुंज को भेद, पहुँच कर पारिजात के वन में
वह अवश्य ही कर देगा सन्तप्त तुम्हारे मन को ।
और प्रीति जगने पर तुम बैकुण्ठ -लोक को तज कर
किसी रात, निश्चय, भूतल पर स्वयं चली आओगी ।

उर्वशी

सो तो मैं आ गयी, किन्तु, यह वैसा ही आना है,
अयस्कान्त से खींच अयस को जैसे निज बाँहों में ।
पर इस आने में किंचित् भी स्वाद कहां उस सुख का,
जो सुख मिलता उन मनस्विनी वागलोचनाओं को
जिन्हें प्रेम से उद्वेलित विक्रमी पुरुष बलशाली
रण से लाते जीत या कि बल-सहित हरण करते हैं ।

सदियाँ आतीं स्वयं, ध्यान सागर पर, कब देता है ?
वेला का सौभाग्य जिसे आलिंगन में भरने को
घिर-अतृप्त उद्भ्रान्त महोदधि लहराता रहता है ।

वही धन्य जो मानमयी प्रणयी के बाहु-वलय में
खिंची नहीं, विक्रम -तरंग पर चढ़ी हुई आती है ।

ग्रहण किया क्यों नहीं, माँग लाने में यदि अपयश था ?

पुरुरवा

अयशमूल दोनों विकर्म हैं, हरण हो कि भिक्षाटन ।
और हरण करता मैं किसका ? उस सौन्दर्य-सुधा का
जो दैवों की शांति, इन्द्र के दृग की शीतलता थी ?

नहीं बढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर,
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरी को ।
तब भी प्रतिष्ठानपुर वन्दित है सहस्त्र मुकुटों से,
और राज्य सीमा दिन-दिन विस्तृत होती जाती है ।
इसी भाँति, प्रत्येक सुयश, सुख, विजय सिद्धि जीवन की
अनायास, स्वयमेव प्राप्त मुझ को होती आयी है ।
यह सब उनकी कृपा, सृष्टि जिनकी निगूढ़ रचना है ।
झुके हुए हम धनुष मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं ।

मैं मनुष्य कामना -वायु मेरे भीतर बहती है
कभी मन्द गति से प्राणों में सिहरन -पुलक जगा कर;
कभी डालियों को मरोड़ झंझा की दारुण गति से
मन का दीपक बुझा, बना कर तिमिराच्छन्न हृदय को ।
किन्तु पुरुष क्या कभी मानता है तन के शासन को ?
फिर होता संघर्ष, तिमिर में दीपक फिर जलते हैं ।

रंगों की आकुल तरंग जब हम को कस लेती है,
हम केवल डूबते नहीं ऊपर भी उतराते हैं
पुण्डरीक के सदृश मृत्ति -जल ही जिसका जीवन है,
पर तब भी रहता अलिप्त जो सलिल और कर्दम से ।

नहीं इतर इच्छाओं तक ही अनासक्ति सीमित है;
उसका किंचित् स्पर्श तभी पवित्र करता है ।

उर्वशी

यह मैं क्या सुन रही ? देवताओं के जग से चलकर
फिर मैं क्या फँस गयी किसी सुर के ही बाहु-वलय में ?
अन्धकार की मैं प्रतिमा हूँ ? जब तक हृदय तुम्हारा
तिमिर -ग्रस्त है, तब तक ही मैं उसपर राज करूँगी ?
और जलाओगे जिस दिन बुझे हुए दीपक को,
मुझे त्याग दोगे प्रभात में रजनी की माला -सी ?
वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है, पाकर जिसे त्वचा की
नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठते हैं ?
वह आलिंगन अन्धकार है, जिसमें बँध जाने पर
हम प्रकाश के महासिन्धु में उतराने लगते हैं ?
और कहोगे तिमिर-शूल उस चुम्बन को भी जिससे
जड़ता की ग्रन्थियाँ निखिल तन-मन की खुल जाती हैं ?

यह भी कैसी द्विधा ? देवता गन्धों के घेरे से
निकल नहीं मधुपूर्ण पुष्प का चुम्बन ले सकते हैं ।
और देहधर्मी नर फूलों के शरीर को तज कर
ललचाता है दूर गन्ध के नभ में उड़ जाने को ।

अनासक्ति तुम कहो, किन्तु, इस द्विधा-ग्रस्त मानव की
झाँकी तुम में देख मुझे, जानें क्यों, भय लगता है ।
तन से मुझ को कसे हुए आपने दृढ़ आलिंगन में,
मन से, किन्तु विषण्ण दूर तुम कहाँ चले जाते हो ?
बरसा कर पीयूष प्रेम का, आँखों से आँखों में,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो ?
कभी-कभी लगता है, तुम से जो कुच भी कहती हूँ
आशय उसका नहीं, शब्द केवल मेरे सुनते हो ।

क्षण में प्रेम अगाध, सिन्धु हो जैसे आलोड़न में;
और पुन: वह शान्ति, नहीं जब पत्ते भी हिलते हैं ।
तभी दृष्टि युग-युग के परिचय से उत्फुल्ल, हरी-सी;
और अभी यह भाव, गोद में पड़ी हुई मैं जैसे
युवती नारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता हूँ ।
शमित-वह्नि सुर की शीतलता तो अज्ञात नहीं है,
छक कर देता उसे नहीं पीने जो रस जीवन का,
न तो देवता-सदृश गन्ध-नभ में जीने देता है ।

पुरुरवा

कौन है अंकुश, इसे मैं भी नहीं पहचानता हूँ ।
पर सरोवर के किनारे कण्ठ में जो जल रही है,
उस तृषा, उस वेदना को जानता हूँ ।

आग है कोई नहीं जो शांत होती :
और खुलकर खेलने से भी निरंतर भागती है ।

रूप का रसमय निमंत्रण
या कि मेरे ही रुधिर की वह्नि
मुझ को शांति से जीने न देती ।
हर घड़ी कहती, 'उठो,
इस चन्द्रमा को हाथ से धर कर निचोड़ो,
पान कर लो यह सुधा, मैं शान्त हूँगी,
अब नहीं आगे कभी उद्भ्रांत हूँगी ।'

किन्तु रस के पात्र पर ज्यों ही लगाता हूँ अधर को,
घूँट या दो घूँट पीते ही
न जाने, किस आतल से नाद यह आता,
'अभी तक भी न समझा ?

दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है ।
रूप की आराधना का मार्ग आलिंगन नहीं है ।'

टूट गिरती हैं उमंगें
बाहुओं का पाश हो जाता शिथिल है ।
अप्रतिभ मैं फिर उसी दुर्गम जलधि में डूब जाता,
फिर वही उद्विग्न चिन्तन,
फिर वही पृच्छा चिरंतन,
'रूप की अराधना का मार्ग,
आलिंगन नहीं तो और क्या है ?
स्नेह का सौन्दर्य को उपहार
रस-चुम्बन नहीं तो और क्या है ?'
रक्त की उत्तप्त लहरों की परिधि के पार
कोई सत्य हो तो,
चाहता हूँ भेद उसका जान लूँ ।
पन्थ हो सौन्दर्य की आराधना का व्योम में यदि
शून्य की उस रेख को पहचान लूँ ।

पर जहाँ तक उड़ू, इस प्रश्न का उत्तर नहीं है ।
मृत्ति महदाकाश में ठहरे कहाँ पर ? शून्य है सब ।
और नीचे भी नहीं सन्तोष,
मिट्टी के हृदय से
दूर होता ही कभी अम्बर नहीं है ।

इस व्यथा को झेलता
आकाश की निरसीमता में
घूमता फिरता विकल, विभ्रान्त
पर कुछ भी न पाता ।
प्रश्न जो बढ़ता,

गगन की शून्यता में गूँज कर सब ओर
मेरे ही श्रवण में लौट आता ।

और इतने में मही का गान फिर देता सुनायी,
'हम वही जग हैं, जहाँ पर फूल खिलते हैं ।
दूब है शय्या हमारे देवता की,
पुष्प के वे कुंज मंदिर हैं
जहाँ शीतल, हरित, एकान्त मण्डप में प्रकृति के
कण्टकित युवती - युवक स्वच्छन्द मिलते हैं ।

'इन कपोलों की ललाई देखते हो ?
और अधरों की हँसी यह कुन्द -सी, जूही-कली
गौर चम्पक-यष्टि-सी यह देह श्लथ पुष्पाभरण से,
स्वर्ण की प्रतिमा कला के स्वप्न-साँचे में ढली-सी ?

'यह तुम्हारी कल्पना है, प्यार कर लो ।
रूपसी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर ।
ओ गगनचर ! यहाँ मधुमास छाया है ।
भूमि पर उतरो,
कमल, कर्पूर, कुंकुम से, कुटज से
इस अतुल सौन्दर्य का शृंगार कर लो ।'

जीत आता है मही से ?
या कि मेरे ही रुधिर का राग
यह उठता गगन में ?
बुलबुलों-सी फूटने लगतीं मधुर स्मृतियाँ हृदय में;
याद आता है मंदिर उल्लास में फूला हुआ वन
याद आता है तरंगित अंग के रोमांच, कम्पन;
स्वर्णवर्णा वल्लरी में फूल-से खिलते हुए मुख,

याद आता है निशा के ज्वार में उन्माद का सुख ।
कामनाएँ प्राण को हिलकोरती हैं ।
चुम्बनों के चिह्न लग पड़ते त्वचा में ।

फिर किसी का स्पर्श पाने को तृषा चीत्कार करती ।
मैं न रुक पाता कहीं,
फिर लौट आता हूँ पिपासित
शून्य से साकार सुषमा के भुवन में
युद्ध से भागे हुए उस वेदना -विह्वल युग-सा
जो कहीं रुकता नहीं,
बेचैन जा गिरता अकुण्ठित
तीर-सा सीधे प्रिया की गोद में ।

चूमता हूँ दूब को, जल को, प्रसूनों, पल्लवों को,
वल्लरी को बाँह भर उर से लगाता हूँ;
बालकों-सा मैं तुम्हारे वक्ष में मुँह को छिपा कर
नींद की निस्तब्धता में डूब जाता हूँ ।

नींद जल का स्रोत है, छाया सघन है,
नींद श्यामल मेघ है, शीतल पवन है ।

किन्तु, जग कर देखता हूँ
कामनाएँ वर्त्तिका-सी बल रही हैं,
जिस तरह पहले पिपासा से विकल थीं,
प्यास से आकुल अभी भी जल रही हैं ।
रात भर, मानो, उन्हें दीपक -सदृश जलना पड़ा हो,
नींद में, मानो, किसी मरुदेश में चलना पड़ा हो ।
फिर क्षुधित कोई अतिथि आवाज देता,
फिर अधर-पुट खोजने लगते अधर को,

कामना छू कर त्वचा को फिर जगाती है,
रेंगने लगते सहस्रों साँप सोने के रुधिर में,
चेतना रस की लहर में डूब जाती है ।

अब तलक सहसा
न जानें, ध्यान खो जाता कहाँ पर ।
सत्य ही, रहता नहीं यह ज्ञान,
तुम कविता, कुसुम या कामिनी हो ।
आरती की ज्योति को भुज में समेटे
मैं तुम्हारी ओर अपलक देखता एकान्त मन से
रूप के उद्‌गम अगम का भेद गुनता हूँ ।

साँस में सौरभ, तुम्हारे वर्ण में गायन भरा है,
सींचता हूँ प्राण को इस गन्ध की भींनी लहर से,
और अंगों की विभा की वीचियों से एक होकर
मैं तुम्हारे रंग का संगीत सुनता हूँ ।
और फिर यह सोचने लगता, कहाँ, किस लोक में हूँ ?
कौन है यह वन सघन हरियालियों का,
झूमते फूलों, लचकती डालियों का ?
कौन है यह देश जिसकी स्वामिनी मुझ को निरन्तर
वारुणी की धार से नहला रही है ?
कौन है यह जग, समेटे अंग में ज्वालामुखी को
चाँदनी चुमकार कर बहला रही है ?

कौमुदी के इस सुनहरे जाल का बल तोलता हूँ
एक पल उड्डीन होने के लिए पर खोलता हूँ ।
पर प्रभंजन मत्त है इस भांति रस-आमोद में,
उड़ न सकता, लौट गिरता है कुसुम की गोद में ।

टूटता तोड़े नहीं यह किसलयों का दाम;
फूलों की लड़ी जो बँध गयी, खुलती नहीं है ।
कामनाओं के झकोरे रोकते हैं राह मेरी,
खींच लेती है तृषा पीछे पकड़ कर बाँह मेरी ।

सिन्धु-सा उद्दाम, अपरम्पार मेरा बल कहाँ है ?
गूँजता जिस शक्ति का सर्वत्र जयजयकार
उस अटल संकल्प का सम्बल कहाँ है ?

यह शिला-सा वक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजाएँ
सूर्य के आलोक से दीपित, समुन्नत भाल,
मेरे प्राण का सागर आगम, उत्ताल, उच्छल है ।
सामने टिकते नहीं वनराज, पर्वत डोलते हैं,
काँपता है कुण्डली मारे समय का व्याल,
मेरी बाँह में मारुत, 'गरुड़ गजराज का बल है ।

मर्त्य मानव की विजय का तूर्य हूँ मैं,
उर्वशी ! अपने समय का सूर्य हूँ मैं ।
अन्ध तम के भाल पर पावक जलाता हूँ
बादलों के सीस पर स्पन्दन चलाता हूँ ।

पर न जानें बात क्या है !
इन्द्र का आयुध पुरुष जो झेल सकता है,
सिंह से बाँहें मिला कर खेल सकता है,
फूल के आगे वही असहाय हो जाता,
शक्ति के रहते हुए निरुपाय हो जाता ।

विद्ध हो जाता सहज बंकिम नयन के बाण से,
जीत लेती रुपसी नारी उसे मुसकान से ।

मैं तुम्हारे बाण का बींधा हुआ खग,
वक्ष पर धर सीस मरना चाहता हूँ ।
मैं तुम्हारे हाथ का लीला -कमल हूँ,
प्राण के सर में उतरना चाहता हूँ ।

कौन कहता है,
तुम्हें मैं छोड़ कर आकाश में विचरण करूँगा ?
बाहुओं के इस वलय में गात्र ही वन्दी नहीं है,
वक्ष के इस तल्प पर सोती न केवल देह,
मेरे व्यग्र व्याकुल प्राण भी विश्राम पाते हैं ।

मर्त्य नर को देवता कहना मृषा है,
देवता शीतल, मनुज अँगार है ।
देवताओं की नदी में ताप की लहरें न उठतीं,
किन्तु नर के रक्त में ज्वालामुखी हुंकारती है,
घूर्णियाँ चिनगारियों की नाचती हैं,
नाचते उड़ कर दहन के खण्ड पत्तों-से हवा में,
मानवों का मन गले-पिघले अनल की धार है ।

चाहिए देवत्व,
पर, इस आग को धर दूँ कहाँ पर ?
कामनाओं को विसर्जित व्योम में कर दूँ कहाँ पर ?
वह्नि का बेचैन यह रसकोष, बोलो, कौन लेगा ?
आग के बदले मुझे सन्तोष, बोलो, कौन देगा ?

फिर दिशाएँ मौन, फिर उत्तर नहीं है ।
प्राण की चिर-संगिनी यह वह्नि,
इसको साथ लेकर
भूमि से आकाश तक चलते रहो ।

मर्त्य नर का भाग्य !
जब तक प्रेम की धारा न मिलती,
आप अपनी आग में जलते रहो ।

एक ही आशा, मरुस्थल की तपन में
ओ सजल कादम्बिनी ! सिर पर तुम्हारी छाँह है ।
एक ही सुख है, उरस्थल से लगा हूँ ।
ग्रीव के नीचे तुम्हारी बाँह है ।

इन प्रफुल्लित प्राण-पुष्पों में मुझे शाश्वत शरण दो,
गन्ध के इस लोक से बाहर न जाना चाहता हूँ ।
मैं तुम्हारे रक्त के कण में समा कर
प्रार्थना के गीत गाना चाहता हूँ ।

उर्वशी

स्वर्णदी, सत्य ही, वह जिसमें ऊर्मियाँ नहीं, खर पात नहीं;
देवता, शेष जिनके मन में कामना, द्वन्द्व परिताप नहीं ।
नर ओ, जीवन के चटुल वेग ! तू होता क्यों इतना कातर ?
तू पुरुष तक, गरज रहा जब तक भीतर यह वैश्वनर १

जब तक यह पावक शेष, तभी तक सखा-मित्र त्रिभुवन तेरा,
चलता है भूतल छोड़ बादलों के ऊपर स्यन्दन तेरा ।

तब तक यह पावक शेष, तभी तक सिन्धु समादर करता है,
अपना समस्त मणि-रत्न -कोष चरणों पर लाकर धरता ।
पथ नहीं रोकते सिंह, राह देती है सघन अरण्यानी.
तब तक ही सावधान रहते बढ़ कर अपनाने को,
अप्सरा स्वर्ग से आती है अधरों का चुम्बन पाने को ।

जब तक यह पावक शष, तभी तक भाव द्वन्द्व के जगते हैं,
बारी-बारी से मही, स्वर्ग, दोनों ही सुन्दर लगते हैं ।
मरघट की आती याद तभी तक फुल्ल प्रसूनों के वन में,
सुने श्मशान को देख चमेली -जुही फूलती हैं मन में ।
शय्या की याद तभी तक दैवालय में तुझे सताती है,
औ शयन-कक्ष में मूर्ति देवता की मन में फिर जाती है ।

कित्विष के मल का लेश नहीं, यह शिखा शुभ्र पावक केवल
जो किये जा रहा तुझे दग्ध कर क्षण-क्षण और अधिक उज्वल ।
जितना ही यह खर-अनल-ज्वार शोणित में उमड़ उबलता है,
उतना ही यौवन अगुरु दीप्त कुछ और धधक कर जलता है ।
मैं इसी अगुरु की ताप-तप्त, मधुमयी गन्ध पीने आयी,
निर्जीव स्वर्ग को छोड़ भूमि की ज्वाला में जीने आयी ।

बुझ जाय मृत्तिका अनल, स्वर्गपुर का तू इतना ध्यान न कर;
जो तुझे दीप्ति से सजती है, उस ज्वाला का अपमान न कर ।
तू नहीं जानता इसे, वस्तु जो इस ज्वाला में खिलती है,
सुर क्या, सुरेश के आलिंगन में भी न कभी वह मिलती है ।
यह विकल, व्यग्र, विह्वल प्रहर्ष सुर की सुन्दरी कहाँ पाये ?
प्रज्वलित रक्त का मधुर स्पर्श नभ की अप्सरी कहाँ पाये ?

वे रक्हीन शुचि, सौम्य पुष्प अम्बरपुर के शीतल सुन्दर
दें उन्हें किन्तु, क्या दान स्वप्न जिनके लोहित सन्तप्त
यह तो नर ही है, एक साथ जो शीतल और ज्वलित भी
मन्दिर में साधक-व्रती, पुष्प-वन में कन्दर्प ललित भी है ।
योगी अनन्त चिन्मय, अरूप को रूपायित करने वाला,
भोगी ज्वलन्त, रमणी-मुख पर चुम्बन अधीर धरने वाला;

मन की असीमता में निबद्ध नक्षत्र, पिन्ड, ग्रह, दिशाकाश
तन में रसस्विनी की धारा, मिट्टी की मृदु सोंधी सुवास,

मानव मानव ही नहीं, अमृत -नन्दन यह लेख अमर भी है
वह एक साथ जल-अनल, मृत्ति-महदम्बर, क्षर-अक्षर भी ।

तू मनुज नहीं, देवता, क्रान्ति से मुझे मंत्र -मोहित कर ले
फिर मनुज -रूप धरा उठा गाढ़ अपने आलिंगन में भर
मैं दो विटपों के बीच मग्न नन्हीं लतिका-सी सो जाऊँ,
छोटी तरंग-सी टूट उरस्थल के महीग्र पर खो जाऊँ ।

आ मेरे प्यारे तृषित ! श्रान्त ! अन्त:पुर में मज्जित करके,
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके ।
रसमयी मेघमाला बन कर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी,
फूलों की छाँह - तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी ।

***

असाध्य वीणा

2.2 अज्ञेय

2.2.1. जीवन परिचय :

अज्ञेय का जन्म 7 मई 1911 को हुआ । उन दिनों इनके पिता भारतीय पुरातत्व विभाग में उच्च पद पर थे । कसिया(कुशीनगर) में खुदाई चल रही थी । वहीं खुदाई शिविर में ही इनका जन्म हुआ । पिता को सरकारी नौकरी में देश के अनेक भागों में जाना पड़ा । अत: अज्ञेय ने व्यवस्थित पढ़ाई ज्यादा नहीं की । परंतु देश और धरती के अध्ययय का खूब मौका मिला । पंजाब में मैट्रिक और मद्रास से इंटर पास की । बाद में लाहौर से बी.एससी. बने । अज्ञेय को संस्कृत और अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान था ।

नौकरी की शुरूआत 'सैनिक' पत्रिका के संपादक रूप में 1937 में की । बाद में विशाल भारत (कलकत्ता) के संपादक बने । इससे अज्ञेय का साहित्यकार प्रकाश में आया । अब उन्होंने कुछ समय आल इंडिया रेडियो में काम किया । इसे छोड़ सेना में नौकरी कर ली । सेना में उन्हें बर्मा के मोर्चे पर द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ । इसमें वे ज्यादा दिन नहीं रह सके । स्वतंत्र रूप में 'प्रतीक' पत्रिका निकालना शुरू किया ।

पहली बार युनेस्को के आमंत्रण पर विदेश भ्रमण के लिए गए । यह यूरोप का दौरा काफी महत्वपूर्ण रहा । बाद में यूएस के केलिफोर्निया में अध्यापक रहे । इस दौरान पूरे अमेरिका घूमने का अवसर मिला । फिर तो रूस और युगोस्लोवाकिया तक भ्रमण किया ।

1965 में अज्ञेयजी को 'दिमान' और फिर 'नवभारत टाइम्स' का पूरा दायित्व दिया । इसकी पूरी टीम अपने मन मुताबिक चुनी । परंतु सफलता के शिखर पर होने के बावजूद मुक्त प्रवृत्ति के कवि को यह काम छोड़ना पड़ा । कुछ समय तक अज्ञेयजी ने नामवरसिंह के साथ जोधपुर विश्वविद्यालय में काम किया । फिर दिल्ली आ गए । 'नया प्रतीक' अपने बूते पर निकाला । पर ऐसी गैर व्यावसायिक पत्रिका ज्यादा दिन नहीं टिकी । अत: कुछ दिन के लिए फ्रांस चले गए । अज्ञेय का यायावरी मन बंध कर रहना नहीं जानता था । अत: लौटे दिल्ली में ही रह गए । वहीं हर्ट अटैक से अचानक देहावसान हो गया ।

शुरू में अज्ञेय क्रांतिकारियों के साथ रहे । स्वतंत्रता के लिए गुप्त रह कर क्रांति की मशाल जलाने का प्रयास था । इसके लिए जेल जाना पड़ा । जब देश स्वतंत्र हुआ तो कवि इसकी सांस्कृतिक

पहचान और उसकी सचेतनता के लिए सांस्कृतिक यात्रायें आयोजित करता है । कवि कर्म के साथ इस प्रकार की सक्रियता उन्हें हिंदी साहित्य में अति विशिष्ट बना देती है । कृष्णजन्मभूमि की यात्रा और जानकी जीवन यात्रा के जरिये साहित्यकार को संस्कृति सचेतन करने, उसे जोड़ने का प्रयास किया । नर्मदा की सांस्कृतिक यात्रा से पहले ही वे दिवंगत हो गए ।

अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया । 1964 ई. में 'आंगन के पार द्वार' के लिए केंद्र साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्रदान किया गया । 1978 ई. में अज्ञेय 'कितनी नावों पर कितनी बार' काव्य संकलन हेतु भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हुए । परंतु इसी पुरस्कार राशि में इतनी ही रकम स्वयं जोड़ कर एक ट्रस्ट गठन किया । नई पीढ़ी को मार्गदर्शन और संगठित करने उन्होंने 'वत्सलनिधि' ट्रस्टफंड का गठन किया था ।

2.2.2 कृतियाँ :

अज्ञेय की कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्न हैं :

काव्य - भग्नदूत, इत्यलम, हरीघास पर क्षण भर, बावरा अहेरी, आंगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ ।

उपन्यास - शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने अपने अजनबी

कथा संकलन : विपथगा, जयदोल, ये तेरे प्रति रूप ।

निबंध संकलन - आत्मनेपद, सबरंग, भवंती, अंतरा, संवत्सर ।

यात्रा वृत्त - तार सप्तक के चार खंड , विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखे संपादकीय एवं टिप्पणियाँ भी अत्यंत महत्वपूर्ण देन है । कुछ ग्रंथों का अनुवाद किया । इनमें जापानी हाइकू कविताओं को काफी सफलता मिली ।

2.2.3. प्रयोगवादी कविता और अज्ञेय :

हिंदी काव्य में द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविता में उपदेश और नीतिगत संदेश को 'प्रमुख रूप में वर्ण्य वस्तु रूप में रखा गया । इसके आगे मानववादी पक्ष प्रमुख रहा । स्वानुभूति की विशेष रूप में अभिव्यक्ति हुई । श्रृंगार वर्णन में कवि ने मांसल और स्थूल चित्रण के स्थान पर अतीन्द्रिय और सूक्ष्म मानसिक चित्रण को वरीयता दी गई । इस छायावादी काव्य धारा के प्रति व्यक्तिवादी भावधारा प्रबल हुई । इसमें छायावादी सुकुमार -कोमल कल्पना नहीं थी । प्रगतिवादी काव्यधारा की ठोस और रुक्ष - शुष्क रूप लिये यथार्थ का रूप था । कवि युग में रह कर नये प्रयोगों की ओर अधिक झुका था । कवि ने कविता के माध्यम से राजनैतिक मतवाद का झंडा उठाने को भी स्वीकार नहीं किया । अत: 40-41

के दौरान बुद्धिवादी समाज आंदलनों से हट कर नयीधारा की ओर बढ़ा । कविता की नई-नई राहों का अन्वेषण था, रोमांटिक भावुकता से मुक्त रह सादृश्यमूलक अलंकारों की जगह स्वत: स्फूर्त प्रतीकों को सजीव बिम्बों को सजाया गया । ये ही काव्यात्मक प्रयोग थे जिन के कारण परंपरा में चली आ रही कविता से हटकर नया स्वाद, नई छवि और नई काव्य वस्तु लिए थी । यह 'प्रयोगवाद' निराला में मिला और अज्ञेय ने इसे ठोस आकार दे कर वाद के रूप में परिवक्व कर दिया । इसमें प्रयोग साध्य था । परंपरा को निष्क्रय कहा गया । यहाँ नये उपमान ही नहीं अभिनव बिम्ब योजना के जरिये सामान्य को भी कविता का उपादान बनाया ।

अज्ञेय ने इस आंदोलन को ठोस रूप दिया सप्तक परंपरा का श्रीगणेश कर के । पहला तार सप्तक (1944) अज्ञेय साहित्य मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजकुमार माथुर, रामविलास ार्मा की कविताओं को ले कर सामने आया । अज्ञेय ने लिखा , ये कवि भिन्न-भिन्न विचारधारा , भिन्न काव्य मूल्यों को, लेकर रच रहे हैं । रचनाकार अन्वेषक नहीं, नूतन राह के पथान्वेषी हैं यही इनमें सबसे सामान्य बात है । इसके आठ वर्ष बाद 1951 में दूसरा सप्तक आया । इसके प्रमुख रचनाकार हुए : भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती । हालांकि अपने -अपने वक्तव्य में इन्होंने अपने राजनैतिक विचारों को रखा । फिर भी विरोधी विचार रहने पर भी इनको उसी प्रयोग की कसौटी के आधार पर एक संकलन में रखा । प्रयोगवाद का महत्व प्रतिष्ठित हो चुका था । नई पीढ़ी इसमें राजनीति से हट कर कविकर्म के आधार पर जुड़ी । तीसरे सप्तक में कीर्ति चौधरी, मदनवात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही एवं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को शामिल किया । इसका प्रकाशन 1959 में हुआ ।

इस धारा में पुरानी परंपरा से हटकर नया मार्ग अथपनाया । यह काव्यांदोलन कविता में विशिष्टीकरण को महत्व दे रहा है । प्रचलित भाषा को नये युग की अभिव्यक्ति में असमर्थ पा रहा है । अत: नये -नये प्रतीक और नये से नये बिम्ब लेकर कविता आयी । इसमें नये चिंतन के साथ-साथ एकनूतन अन्वेषी की दृष्टि लेकर चले । इनका नेतृत्व अज्ञेय ने किया, इनका विश्लेषण अज्ञेय ने किया और प्रकाशन के जरिये स्थापना में अज्ञेय ने महत्वपूर्ण भूमिका ली है ।

कुछ आलोचकों का मानना है कि अज्ञेय ने यह नूतन धारा मूलत: पश्चिमी काव्यधारा की तर्ज पर की है । वे मानते थे - बंद घर में प्रकाश पूर्व या पश्चिम या किसी भी निश्चित दिशा से आता है - पर वह खुले आकाश में सभी ओर समाया रहता है । वे एक दिशा से प्रभावित नहीं हैं । इधर इलियट - एजरा पाउंड को लेकर अन्वेसी बने हैं । कवि धर्म, राजनीति का अन्वेसी नहीं होता । वह आत्मान्वेषी है । वहाँ जो अनुभूति मिलती है, वह कविता के माध्यम से प्रस्तुत करता है । उसे कवि बुद्धि पर कस कर परखता है । यहाँ पर कवि के लिए सार्त्र, इलियट, कर्मिंग्स का महत्व भी कम नहीं । अज्ञेय टीएस

इलियट, की तरह व्यक्तिगत भाव और काव्यगत भाव दोनों का अलग अस्तित्व मानते हैं । काव्य को वे निर्वैयक्तीकरण की धारा में रखते हैं । वह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं, व्यापक है ।

अज्ञेय में प्रतीक और बिम्ब का समाहार देखकर फ्रांसीसी काव्यधारा में प्रतीक व बिम्ब स्मरण में ताजा हो जाते हैं । अज्ञेय के ये प्रतीक सार्थक और प्रभावी बने हैं । 'सांप' कविता इसमें खूब प्रसिद्ध है । 'जिजीविषा' के लिए 'हांफती मछली' का बिम्ब रूप बहुत सराहा गया । रेत का अस्थिरता और सागर को विविध हलचलों, 'संघर्षों से भरे जीवन का प्रतीक स्वीकार किया है । 'वेस्टलेंड' में जैसे विविध धर्मों को लिया, अज्ञेय ने भी 'क्रोंच वध' का प्रतीक लिया है । हालांकि वे व्यंग्योक्ति कर रहे हैं -

क्रौंच बैठा हो कभी वल्मीक पर
तो मत समझ
वह अनुष्टुप बांचता है, संगिनी के स्मरण के
जान ले वह दीमकों की टोह में है ।''

उसी तरह कवि ने 'एकलव्य' का प्रतीक लेकर द्रोणाचार्य पर निशाना साधा है । बुद्धिजीवी को 'मुनि' रूप में व्यक्त कर प्रतीक बनाया । अज्ञेय सीधे रूप में चित्रण को नहीं मानते, अन्योक्ति का सहारा लेते हैं । इसमें अधूरे कथनों के द्वारा जटिल संवेदना को व्यक्त कर रहे हैं । कवि ने काव्यवस्तु, शैली, छंद, तुक आदि विभिन्न स्तरों पर नूतन प्रयोग किये हैं ।

वे प्रेम, प्रणय को दैवी-दानवी रूप में नहीं लेते । उसका मानवी रूप अंगीकार करते हैं । विरह के क्षणों में होने वाली पीड़ा को वे छिपाते नहीं, स्पष्टत: कहते हैं :

'प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा ।
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा ।''

कवि व्यक्तिनिष्ठ है । क्रांति या समाजविद्रोह की बात अलग है । कवि कभी प्रकृति की रमणीयता में शांति पाता है, कभी प्राकृतिक एकांत समर्पित हो रहा है ।

''यह खुला वीरान संसृति का घना हो सिमट आता है -
और मैं एकांत होता हूँ समर्पित ।''

इसीमें कवि क्षणभर की अनुभूति को महत्व देते हैं । जीवन का हर क्षण अमोघ है, अज्ञेय है, स्वतंत्र और स्वच्छन्द है ।

इसी में जीवन की गहरी इच्छा से युक्त है । भयंकर आंधी में पड़कर यह भावना दूनी हो रही है । समस्याओं से घिर कर भी जीवन जीने की तड़फ है । यह भावना कवि ने बार-बार 'जीवन छाया', 'सोन मछली' 'बना दे चितेरे' आदि कविताओं में व्यक्त हो रही है ।

इसमें कवि समाज में फैली कुंठा, घुटन, बेबसी की बात कहता है । पर नूतन सौन्दर्य बोध

उनका लक्ष्य है । मानो पुराने उपमान मैले हो गए हैं । प्राचीन उपमानों प्रतीकों से हट कर नयी पद्धति लेकर सौन्दर्य चित्र आंक रहा है ।

''लहलहाती हवा में
कलगी छरहरी बाजरे की ।''

अपनी प्रिया के लिए नये उपमान, नये बिम्ब प्रयोग करता है । साथ में आत्मा -परमात्मा के चित्रण में भी पीछे नहीं है । आत्मा वधू है, परमात्मा को महाशून्य कहा है । उसके विवाह की बात कर रहा है :

''अरी ओ आत्मा री
कन्या भोली क्वांरी,
महाशून्य के साथ भांवरें तेरी रची गयी ।''

कवि गौतम बुद्ध की करुणा पारमिता से भी प्रभावित है । 'महामौन', 'अविभाज्य', ' अप्रमेय', 'शब्दहीन' जैसे शब्द प्रयोग अरुप के संसार में सब रूपों में उपलब्धि का संकेत है । करुणा मैं भी, प्रेम से वे समर्पण भाव में जा रहे हैं ।

कवि का रोम रोम देश प्रेम में रमा है । कटु व्यंग्य लिखके उसकी दुरुह स्थिति का चित्रांकित कर रहा है ।

कवि की भाषा की ताजगी अपना विशेष रूप है । खड़ी बोली का साहित्यिक रूप है । परंतु कुछ कविताओं में संस्कृतनिष्ठ, तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग है । लेकिन बाद में एक दौर आता है जब कवि सरल, सुबोध, तद्भव प्रधान भाषा अपना रहा है । फिर बोलचाल की सामान्य भाषा पर उतर आता है । लोकप्रचलित शब्दों को काव्य रूप प्रदान किया है । इसी प्रकार बिम्ब विधान में अज्ञेय का अपना प्रयोग है । इसमें वे दृश्य बिम्ब (सिरिस ने लाल बेणी बांध ली), श्रव्य बिम्ब (झांझ की फुफकार, तात)

घ्रातव्य बिम्ब (दूर ही से तुम्हारी देह)

आस्वाद्य बिम्ब (जिन आँखों को तुम ने गहरा
बतलाया था
उनसे भर -भर मैंने
रूप तुम्हारा पिया) आदि इंन्द्रियों के माध्यम से बिम्ब रचे हैं । इसके अलावा भावों (रति, आक्रोश जिजीविषा करुणा सुख-दु:ख) आदि से नये बिम्ब रचे हैं

क ख ग घ

क) वासना के पंक-सी फैली हुई थी

ख) धर्म हमारा नष्ट हो गया
अग्निधर्म हम हृदय धरेंगे

ग) उछली हुई मछली
जिसकी मरोड़ी हुई देह - वल्ली में
उसकी जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है ।

घ) जिसमें हो तीरंध्र तुम्हारी करुणा
बंटती रहती है दिन -याम ॥

आगे चल कर कवि ने अनेक आध्यात्मिक बिम्बों (जीवन, जीव, ब्रह्म, माया, परमात्मा) को सृजन किया है । इनका कलात्मक सौन्दर्य दृष्टव्य है :

1. दूर वासी मीत मेरे !
पहुँच क्या सकेंगे तुम तक कांपते ये गीत मेरे ।

2. यूथ सृष्टि, किन्तु स्रष्टा का जुर तूने पहचान लिया है

3. ओ आत्मा री तू गयी वरी
ओ संपृक्ता, ओ परिणीता
महाशून्य के साथ भांवरें तेरी रची गयीं ।

अज्ञेय के प्रारंभिक सृजन काल में अनेक पारंपरिक छंद (उभय मात्रिक एवं वर्णिक छंद जैसे - बरवै, हरिगीतिका, रोला, मालिनी, शिखरिणी, मंदाक्रांता) प्रयोग मिलते हैं । कवि धीरे-धीरे शास्त्रीय छंदों से हट कर मुक्त छंद की ओर बढ़ गए । वे बंधे हुए छंद छोड़कर केवल मुक्त छंद के कवि हो गए । शुरू में जो गीत लिखे, वह धारा भी छुट गई । लोक धुन भी मुक्त धारा में नहीं बैठती । अत: अज्ञेय ने लय, तुम की परवाह किये बिना, इनके क्रम को संजोये बिना कविता लिखी । हालांकि इनमें अंतर्लय ढूंढ सकते हैं । परंतु बाद में गद्य जैसे दीखते मुक्त छंद में है और गद्यात्मक छंद भी । जैसे -

ओ विशाल तरु !
गत सहस्र पल्लवन - पतझरों ने जिसका नित रूप संवारा
कितनी बरसातों, कितने खद्योतों ने आरती उतारी ।
दिन भौंरे का गाए गुंजारित,
रातों में झिल्ली ने अनथक मंगल गान सुनाये ।

इस प्रकार अज्ञेय ने शिल्प के नूतन उपकरण रखे हैं । नयी कविता में प्रयोग के मार्गदर्शक अज्ञेय रहे हैं ।

2.2.4. 'असाध्य वीणा' का कथा सार :

'असाध्य वीणा' अज्ञेय की सर्वाधिक लंबी कविता है । इसमें कथानक अत्यंत संक्षिप्त है । मुख्यत: यह भावप्रधान कविता है । इसका आधार जापानी लोक कथा है ।

एक राजा था । उत्तराखंड के पर्वत प्रदेश से एक वीणा आई । उसका निर्माण बज्रकीर्ति ने अत्यंत प्राचीन, मंत्रपूत किरीटी तरु से किया था । उस विााल तरु की जड़ें पाताल लोक तक पहुँच चुकी थी । वासुकि नाग उस शीतलता में फन टिका कर सोता । अनेक जाने-माने कलाकारों ने उसे बजाने, साधने का प्रयत्न किया । सब असमर्थ रहे । कोई ज्ञानी गुणी सफल नहीं हुआ । अत: वह वीणा 'असाध्य वीणा' के नाम से ख्यात हो गई ।

राजा की सभा में केशकंवली, गुफागेह से प्रियवंद पधारे थे । उनके आगे वीणा का प्रस्ताव रखा गया । प्रियंवद ने विनम्र स्र में स्वीकार किया । वीणा को लेकर उन्होंने गोद में रखा । मौन भाव से अपने को शोधने लगे । वे स्वयं को किरीटी तरु को सौंप रहे थे । किरीटी तरु और उसके परिवेश में डूब गए । उन्हें सब स्मरण है । पर स्वयं को भूल रहे हैं । अपने से परे लीन हैं । उन्होंने स्वयं को तरु, नादमय संसृति और रसप्लावन के प्रति समर्पित कर दिया । इस तमाम समर्पण की स्थिति में वीणा झनझना उठी । सब के तन में बिजली की तरह एक रोमांच दौड़ गया । वीणा में ऐसा स्वयंभू संगीत उतर आया । मानो इसमें ब्रह्मा का अखंड अशेष प्रभामय मौन होता है ।

सब उसमें डूब जाते हैं । सबने अलग -अलग स्वर सुना । राजा ने अलग सुना । मानो दूर कहीं दुंदभी बज रही है । राजा का मुकुट किरिटी के मुकुट - सा हलका हो जाता है । ईर्ष्या, महदाकांक्षा , द्वेष, चाटुता आदि पुराने खोल झर गए । रानी ने अलग सुना । मानो बदली कह रही है मणि माणिक, हार, पाट-वस्त्र सब अंधकार के कण हैं । आलोक केवल अनन्य प्रेम है । उसका रसभार मेघ घेरता है । राजा - रानी के अलावा सबने वह संगीत अपने -अपने ढंग से सुना । किसी को प्रभु का मुक्ति वचन था । किसी के लिए आतंक मुक्ति आश्वासन था । किसी को तिजोरी में सोने की खनक था । किसी के लिए अर्से बाद बर्तन में अन्न की महक था । किसी के लिए नवेली बहू के पायल की झंकार थी । किसी के लिए शिशु की किलक । इसके बाद वीणा मूक हो जाती है । राजा ने आनन्द में भर कर 'साधु-साधु' कहा और रानी ने सात लड़ की माला अर्पित की । जनता भी विभोर हो उठी ।

प्रियवंद ने वीणा वादन का श्रेय नहीं लिया । नमस्कार कर अपना कंबल लेकर गुफा गेह की ओर चला गया ।

2.2.5. काव्यात्मक गुण :

अज्ञेय अत्यंत सतर्क रचनाकार हैं । उनकी कृतियों में विभिन्न प्रकार के प्रयोग मिलते हैं । जो

भी लिखते हैं उसका विषय, भाषा, शैली सबमें उनकी अपनी सजग दृष्टि होती है । इस कविता में वे अंतर्दृष्टि से सर्जन के रहस्य की गुत्थियां खोल रहे हैं । रचनात्मकता में पूर्ण समर्पण की मांग रहती है । इसके अनन्तर रही उच्चकोटि की कलात्मक संभावना को प्रस्तुत किया जा सकता है । कलाकार जब विराट सृष्टि के साथ आत्मीयता का अनुभव करता है, कलात्मक संवेदना जागती है । इस कविता में बोलचाल के शब्दों का सटीक प्रयोग हुआ है । (जैसे लुगड़ा, बहिया, हुअन ...)

लेकिन समूची कविता का मिजाज अभिजात है । संस्कृत पदावली और बीच-बीच में समास युक्त प्रयोग के कारण यह कविता विशेष रूप धारण कर लेती है । प्रियंवद विनम्र आत्म साधन का मार्ग अपनाता है । स्वयं को शोधन है । पूर्ण समर्पण कर आत्म विस्मृति की साधना कर रहा है । अपने अहं को पूरी तरह लय कर देता है । अज्ञेय ने इस नये रूप में कलात्मक अनुभव को प्रस्तुत किया है । यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि अज्ञेय का व्यक्तिवाद शुरू से ही है । वह बहुत प्रख्यात नहीं है । अत्यंत अभिजात और परिष्कृत है । एकांत चिंतन को अधिक महत्व दे रहे हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञेय ने अखंड जीवन सत्य की व्याख्या कर एक विशेष तरह के अध्यात्म और रहस्यवाद को रूपायित किया है । इस असाध्य वीणा के माध्यम से जो सत्य रखते हैं, वह कला-सृजन की प्रक्रिया है । यह आधुनिक चेतना को दर्शाती है । सृजनात्मकता की समस्या तो युगों पुरानी है । पर अज्ञेय ने इस ढंग से सिद्धि अर्थात् कलात्मक सिद्धि की बात प्रस्तुत की है । यह काव्यात्मक सिद्धि की बात है जो कवि ने घोर बौद्धिक और भौतिकवादी युग में सत्य कही है । पारंपरिक आध्यात्मिक चेतना, अनुभव या उपलब्धि की भाषा यहाँ नहीं है । कवि नेप्रियवंद के मौन, समर्पण, अहंलोप आदि के रूप में 'असाध्यवीणा' में कलात्मक अनुभव, कलात्मक साधना और कला सृजन की मूलभूत स्थितियों को प्रस्तुत किया है ।

इस मिथकीय परिवेश को कवि ने स्पष्टत: पुराकथानकों, पुरा पात्रों और भावों के उल्लेख से आधुनिकता से जोड़ा है । इन पंक्यिों में द्रष्टव्य है :

> और सुना है -जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताललोक,
> उसकी गंध प्रवण शीतलता से फण टिका नागवासुकी सोता था ।

* * *

> जीवित वही किरीटी तरु
> जिसकी जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित
> जिसके कंधों पर बादल सोते थे ।''

यह किरीटी तरु जड़ से कंधे तक विशाल दूरी का माध्यम है । शाखायें आकाश में फैली हैं ।

यहाँ देशकाल की अखंडता को व्यक्त कर किरीटी तरु को सर्वकालीन और सर्वव्यापी रूप में व्यक्त कर रहा है । अज्ञेय ने यहाँ मिथकीय परिवेश प्रस्तुत किया है, उसका निर्वाह आदि से अंत तक किया । अंत में वे उसका उन्मोचन न कर वीणा के स्वत: बज उठने की मिथकीय स्थति में मानो आत्मकथा कह रहे हैं । काव्यानुभव और कलासृजन का यह उल्लेख स्पष्ट हो रहा है :

''प्रिय पाठक ! यों मेरी वाणी भी
मौन हुई ।''

कवि का यह कथन पूरी कविता का आत्मपरक रूप संकेतित कर रहा है ।प्रियवंद का संकेत, जहाँ वह पुन: गुफा में चला जाता है, मिथकीय घटना प्रवाह की परिणति पर प्रकाश डाल रहा है ।

2.2.6. शब्दार्थ :

प्रियवंद = प्रिय बोलने वाला । केशकंबली = एक साधक का नाम , केश ही जिसका अवरण है । गुफा गेह = गुफा जिन का गृह है । बज्रकीर्ति = एक प्राचीन साधक का नाम । मंत्रपूत = मंत्रों से पवित्र की गई । किरीटी = एक वृक्ष का नाम । कटि -शुंडो = हाथी की सूंढ । परित्राण = रक्षा । वल्कल = वृक्ष की छाल । पराभूत = पराजित । सोध = खोज, संस्कार देना । अंग -अपंग = अंग -भंग कर बताना । ठेका = तबले की ताल । यूथ = झुंड । बहिया = बहनेवाली । तलहटी = हरी घाटी । हुक्का = हुंकारना । धावित = दौड़ते हुए । तंद्रालस - आलस्य पूर्ण । नि:संख्य = असंख्य । सवत्सा = पुत्र सहित । स्वर संभार = स्वरों को संबल देनेवाला । छाया तप = धूप छांव । पटवस्त्र = रेशमी कपड़े । मेखला = तगड़ी । आस्पर्धा = होड़ । चमरौधे = चमड़े के जूते । नट्टिन = नर्तकी । महाजंभ = बड़ी जम्हाई । संधीत = समन्वित । विलग = भिन्न । तिरे = तैर गए । झिपे = झपकीली । वशंवद = वश में हो । सतलड़ी माल = सात लड़ियों की रत्न माला । स्वरजित् = स्वर जीतने वाला । दीठ = दृष्टि । दुलराती = स्नेह -लाड़ करती । आवर्जन = निषेध । तथता = सत्यता । अविभांडव = अखंड । अनाप्त = मापहीन । अद्रवित = द्रवणशीलता रहित । अप्रेय = अनुमान रहित । गेह -गुफा = गुफा का गृह ।

2.2.7. अभ्यास प्रश्न :

व्याख्या के लिए प्रसंग :

i) वज्रकीर्ति ! प्राचीन किरीटी .....क्या है असाध्य ?

ii) नहीं, नहीं ! वीणा यह ..... विश्रांत पायें ।

iii) हाँ, मुझे स्मरण है ..... पुलकत लीयमान ।

iv) सहसा वीणा झनझना ..... निछावर वह कर देगा ।

v) सब डूबे, तिरे, झिपे ..... धन्य धन्य ।
vi) संगीतकार वीणा को ..... मौन हुई ।

आलोचनात्मक दीर्घ उत्तरमूलक प्रश्न :

क) 'असाध्य वीणा' के कथानक की विशेषता पर प्रकाश डालिए ।
ख) 'असाध्य वीणा' के काव्य रूप को स्पष्ट कीजिए ।
ग) लेबी कविता के आधार पर 'असाध्य वीणा' की समीक्षा कीजिए ।
घ) 'असाध्य वीणा' के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए
ङ) प्रयोगवादी कविता के रूप में 'असाध्य वीणा' की समीक्षा कीचिए ।

संक्षिप्त उत्तर मूलक प्रश्न :

i) वीणा को असाध्य क्यों कहा गया ?
ii)प्रियवंद का परिचय दीजिए ?
iii) वीणा का स्वर किसने कैसे सुना ?
iv)वीणा कैसे बजी ?
v) वीणा बजने का क्या प्रभाव पड़ा ?

अतिसंक्षिप्त उत्तर मूलक प्रश्न :

i) वीणा का निर्माण किसने किया ?
ii) वीणा किस वृक्ष से निर्मित थी ?
iii) कविता में दृश्यबिम्ब का उदाहरण दीजिए ?
iv)वीणा कैसे बज उठी .....प्रियवंद ने बजाया ।
v)'अज्ञेय' का पूरा नाम लिखिए।
vi) अज्ञेय रचित दो काव्यग्रंथों के नाम लिखिए ।
vii) 'और कान में जिसके हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य ।''
उक्त पंक्ति में 'जिसके' किसके लिए प्रयुक्त है ?
viii) कविता में यह पंक्ति कौन कहता है -
''मैं तुझे सुनूं
देखूं ध्याऊँ

अनिमेष, स्ब्ध, संयुत, निर्वाक''

ix) संन्यासी ने वीणा कहाँ रखी ?

x) कविता में :

क) सृजन का रहस्य रेखांकित है ।

ख) प्रेम चित्रण हुआ है ।

ग) भारतीय प्राचीन कथा को आधार लिया है

घ) कविता पूरी तुकांत छंद में रची है ।

उक्त विकल्पों में सही विकल्प चुन कर वाक्य पूरा कर लिखिए ।

2.2.8. उपयोगी ग्रंथ :

1. 'अज्ञेय' - सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
2. आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय - डॉ. विद्यानिवास मिश्र
3. 'अज्ञेय' और आधुनिक रचना की समस्या - डॉ. रामस्वरूप चुतर्वेदी
4. अज्ञेय और नई कविता - डॉ. चंद्रकला त्रिपाठी
5. तार सप्तक (I.II,III) भूमिका भाग
6. अज्ञेय का काव्य - डॉ. परितोषमणि त्रिपाठी
7. सदानीरा (अज्ञेय)

असाध्य वीणा

आ गये प्रियंवद ! केशकम्बली ! गुफा-गेह !
राजा ने आसन दिया ! कहा :
कृतकृत्य हुआ मैं तात ! पधारे आप !
भरोसा है अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन की पूरी होगी !

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े ! लाये असाध्य वीणा,
साधक के आगे रख उसको, हट गये ।
सभी की उत्सुक आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं
प्रियंवद के चेहरे पर ।

यह वीणा उत्तराखंड के गिरि-प्रान्तर से
- घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी -
बहुत समय पहले आयी थी ।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीट-तरु से इसे गढ़ा था -
उस के कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कन्धों पर बादल सोते थे,
हिम-वर्षा से पूरे वन -यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वत्कल से कन्धे खुजलाने आते थे ।

और -सुना है - जड़ उसकी जा पहुँची थी पाताल-लोक,
उसकी ग्रन्थ -प्रवण शीतलता से फन टिका नाग बासुकि सोता था ।

उसी किरीटी-तरु से वज्रकीति ने
सारा जीवन इसे गढ़ा :
हठ -साधना यही थी उस साधक की -
वीणा पूरी हुई, साथ साधना- सा ही जीवन - लीला ।
राजा रुके साँस लम्बी लेकर फिर बोले :
मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सब की विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका ।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी ।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ्र-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था ।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा-स्वर्रासद्ध गोद में लेगा ।
तात ! प्रियंवद ! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकीर्ति की वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन-मात्र प्रतीक्षमाण !

केशकम्बली गुफा-गेह ने खोला कम्बल ।
धरती पर चुप-चाप बिछाया ।
वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर प्राण खींच,
कर के प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार ।
धीरे बोला : राजन ! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य , साधक हूँ -
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी ।

वज्रकीर्ति !
प्राचीन किरीटी-तरु !
अभिमन्त्रित वीणा !
'ध्यान -मात्र इन का तो गद्‌गद विह्वल कर देने वाला है !'

चुप हो गया प्रियंवद ।
सभा भी मौन हो रही ।

वाद्य उठा साधक ने गोद में रख लिया ।
धीरे-धीरे झुक उस पर तारों पर मस्क टेक दिया ।
सभा चकित थी - अरे प्रियंवद क्या सोता है ?
केशकम्बली अथवा हो कर पराभूत
झुक गया वाद्य पर ?
वीणा सचमुच क्या है असाध्य ?
पर उसे स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा थर वीणा-
नहीं, स्वयं अपने को शोध रहा था ।
सघन निविड़ में वह अपने को
सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को ।
कौन प्रियंवद है कि दम्भ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे ?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वयं जीवन भर की साधना रही ?
भूल गया था केशकम्बली राज-सभा को :
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिस में साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी -तरु
जिस की जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित
जिस के कन्धों पर बादल सोते थे

और कान में जिस के हिमगिरि कहते थे अपने रहस्य ।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद ।

ओ विशाल तरु !
शत-सहस्र पल्लवन -पतझरों ने जिस का नित रूप सँबारा
कितनी बरसाती कितने खद्योतों ने आती उतारी,
दिन भर भौंरे कर गये गुँहजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथम मंगल-गान सुनाये,
साँझ-सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल की मोद-भरी क्रीड़ा -काकलि
डाल-डाली को कँपा गयी -
ओ दीर्घकाय ।
ओ पूरे झारखण्ड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु, आश्रय,
त्राता महाच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त रूप
मैं तुझे सुनूँ
देखूँ, ध्याऊँ
अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक,
कहाँ साहस पाऊँ
छू सकूँ तुझे ।
तेरी काया के छेद बाँध कर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करें आघात
छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में

स्वयं न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रच गये !
नहीं, नहीं ! वीणा वह मेरी गोद रखी है, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ
ओ तरु-तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ
गुनूँ
विस्मय से भर आँकें
तेरे अनुभव का एक-एक अन्तस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय-
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें पुरें रीतें विश्रान्ति पायें ।

गा तू !
वह वीणा रखी है : तेरा अंग -अपंग ।
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस-बिन्दू
'तू गा :
मेरे अँधियारे अन्तस् में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का -
हाँ, मुझे स्मरण है
बदली -कौंध -पत्तियों पर वर्षा-बूदों की पट-पट ।
घनी रात में महुए का चुप-चाप टपकना ।
चौंके खग-शावक की चिहुँक ।
शिलाओं को दुलराते वन-झरने के

द्रुत लहरीले जल का कल-निदान ।
कुहरे से छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव -ढोलक की थाप ।
गड़रियों की अनमनी बाँसुरी ।
कठफोड़े का ठेका । फुलसूँघनी की आतुर फुरकन :
और-बूँद की ढरकन- इतनी कोमल, तरल, कि झरते-झरते मा
हरसिंगार का फूल बन गयी ।
भरे शरद् के ताल, लहरियों की सरसर -ध्वनि ।
कूँजों का केंकरा काँद लम्बी टिट्टिभ की ।
पंख -युक्त सायक-सी हंस बलाका ।
चीड़ -वनों में गन्ध-अन्ध उन्मद पतंग की जहाँ -जहाँ टकराहट
जल-प्रपात का प्लुत एकस्वर ।
झिल्ली-दादुर, कोकिल-चातक की झंकार पुकारों की यति में
संसृति की साँय-साँय ।

हाँ, मुझे स्मरण है :
दूर पहाड़ों से काले मेघों की बाढ़
हाथियों का मानो चिंघाड़ रहा हो यूथ ।
ओले कगार का गिरना छप्-छड़ाप
झंझा की फुफकार तप्त
पेड़ों का अरस कर टूट-टूट कर गिरना ।
ओले की करी चपत ।
चमे पाले से तनी कटारी-सी सूखी घासों की टूटन ।
ऐंठी मिट्टी का स्निग्ध घास में धीरे-धीरे रिसना ।
हिम-तुषार के फाहे धरती के घावों को सहलाते चुप-चाप ।
घाटियों में भरती
गिरती चट्टानों की गूँज -
काँपती मन्द्र गूँज -अनुगूँज - साँस खोयी-सी, धीरे-धीरे नीरव ।
मुझे स्मरण है

हरी तलहटी में, छोटे पेड़ों की ओट ताल पर
बँधे समय का पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें :
गर्जन, घुर्घुर चीख, मूँक, हुक्का, चिचियाहट ।
कमल-कुमुद -पत्तों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल -पंछी की चाप ।
थाप दादुर की चकित छलाँगों की ।
पन्थी के घोड़े की टाप अधीर ।
अचंचल धीर थाप भैंसों के भारी खुर की ।

मुझे स्मरण है
उझक क्षितिज से
किरण भोर की पहली
जब तकती है ओस-बूँद को
उस क्षण की सहसा चौंकी-सी सिहरन ।
और दुपहरी में जब
घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं
मोमाखियाँ असंख्य झूमती करती गुंजार -
उस लम्बे विलमे क्षण का तन्द्रालस ठहराव ।
और साँझ को
जब तारों की तरल कँपकँपी
स्पर्शहीन झरती है -
मानो नभ में तरल नयन ठिठकी
नि:सख्य सवत्सा युवती माताओं के आशीर्वाद -
उस सन्धि -निमिष की पुलकन लीयमान ।

मुझे स्मरण है :
और चित्र प्रत्येक
स्तब्ध, विजड़ित करता है मुझ को
सुनता हूँ मैं

पर हर स्वर - कंपन लेता है मुझ से सोख-
वायु-सा नाद-भरा मैं उड़ जाता हूँ । ......
मुझे स्मरण है -
पर मुझ को मैं भूल गया हूँ :
सुनता हूँ मैं -
पर मैं मुझ से परे, शब्द में लीयमान ।

मैं नहीं, नहीं ! मैं कहीं नहीं !
और रे तरु ! औ वन !
ओ स्वर -संभार !
नाद -मय संसृति !
ओ रस -प्लावन !
मुझे क्षमा कर - भूल अकिंचनता को मेरी -
मुझे ओट दे - ढँक ले - छा ले -
ओ शरण्य !
मेरे गूँगेपन को तेरे सोय स्वर-सागर का ज्वार डुबा ले !
आ, मुझे भुला,
तू उतर बीन के तारों में
अपने से गा
अपने को गा -
अपने खग-कुल को मुखरित कर
अपनी छाया में पले मृगों की चौकड़ियों को ताल बाँध
अपने छायातप, वृष्टि -पवन, पल्लव-कुसुमन की लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छन्दयुक्त,
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे !
तू गा, तू गा -
तू सन्निधि पा - तू खो
तू आ - तू हो - तू गा । तू गा !

राजा जागे !
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था -
काँपी थीं उँगलियाँ ।
अलग अँगड़ाई ले कर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर-शिशु ।
नीरव परदा रखता जालिक मायावी
सधे करों से धीरे-धीरे
डाल रहा था जाल हेम-तारों का ।

सहसा वीणा झनझना उठी -
संगीतकार की आँखों में, ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी -
रोमांच एक बिजली-सा सब के तन में दौड़ गया ।
अवतरित हुआ संगीत ,
स्वयंभू
जिस में सोता है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय ।

डूब गये सब एक साथ ।
सब अलग -अलग एकाकी पार तिरे ।

राजा ने अलग सुना :
जय देवी यश:काय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल-गीत,
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राज-मुकुट सहसा हलका हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झर गये, निखर आया था जीवन-कांचन

धर्म-भाव से जिसे निछावर वह कर देगा ।
रानी ने अलग सुना :
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी -
तुम्हारे ये मणि-माणक, कण्ठहार पट-वस्त्र
मेखला-किंकिणि -
सब अन्धकार के कण हैं ये ! आलोक एक है
प्यार-अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है रस-भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर उस में छिप कर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास -भरी ।
रानी
उस एक प्यार को साधेगी ।

सब ने भी अलग-अलग सुना ।
इस को
राजा रुके साँस लम्बी ले कर फिर बोले
मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सबकी विद्या हो गयी अकारथ, दर्प चूर
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका ।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी ।
पर मेरा अब भी है विश्वास
कृच्छ्र-तप वज्रकीर्ति का व्यर्थ नहीं था ।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी
इसे जब सच्चा -स्वरसिद्ध गोद में लेगा ।

वह कृपा वाक्य था प्रभुओं का ।
उस को
आतंक -मुक्ति का आश्वासन !
इस को

वह भरी तिजोरी में सोने की खनक ।
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबू ।
किसी एक को नयी बधू की सहमी-सी पायल-ध्वनि
किसी दूसरे को शिशु किलकारी ।
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन -
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़ियों की ।
एक तीसरे को मण्डी की ठेलमठेल, ग्राहकों की अस्पर्श भरी बोलियाँ,
चौथे को मंदिर की ताल-युक्त घंटा -ध्वनि ।
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सम चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की अविराम थपक ।
बटिया पर चमरौधे की रुँधी चाप सातवें के लिए -
और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छु,-छु, ।
इस गमक नट्टिन की एड़ी के घुँघरू की ।
उसे युद्ध का डोल ।
इस संझा-गोधूलि की लघु टुन-टुन -
उसे प्रलय का डमरू -नाद ।
इस को जीवन की पहली अंगड़ाई ।
पर उस को महाजम्भृ विकराल काल ।
सब डूब, तिरे झिपे जागे -
हो रहे वशंवद् स्तब्ध :
इयत्ता सब की अलग-अलग जागी,
संघरत हुई
पा गई विलय ।

वीणा फिर मूक हो गई ।
साधु ! साधु !!

राजा सिहासन से उतरे-

रानी ने अर्पित की सतलड़ी माल,
'हे स्वजित ! धन्य ! धन्य !'
संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढँक -मानो
गोद में सोये शिशु को पालने डाल कर मुग्धा माँ
हट जाये दीठ से दुलराती -
उठ खड़ा हुआ ।
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला :
'श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में -
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था -
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
'सब में गाता है ।'

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली ।
ले कर कम्बल गेह-गुफा को चला गया ।
उठ गयी सभा । सब अपने अपने काम लगे ।
युग पलट गया ।

प्रिय पाठक ! यों मेरी वीणा भी
मौन हुई ।

बावरा अहेरी

2.3 बावरा अहेरी :

अज्ञेय प्रकृति के कवि नहीं हैं । परंतु उन्होंने प्रकृति के उपमानों, बिम्बों और प्रतीकों के सहारे अगणित नये प्रयोग किये हैं । 1950 से 1953 के दौरान लिखी कवितायें 'बावरा अहेरी' संग्रह में संकलित हैं । बावरा अहेरी के 'बावला शिकारी' रूप में प्रयोग किया है । यहाँ पर उगते सूर्य के लिए यह पद आया है । प्रयोगवादी कवि ने पारंपरिक 'सूर्यदेवता' के भाव से हट कर उसे एक अल्हड़ और भोला शिकारी कहा है ।

2.3.1 कविता का सारमर्म :

सुबह आकाश की पूर्व दिशा में प्रकाश का गोला उगता है । उसके उठते ही पूरब में लाली ही लाली फैल जाती है । मानो किसी ने लाल-लाल मणियाँ बिछा दी हैं यह एक तरह का जाल है जो सारी धरती पर फैला है । धीरे-धीरे पूरे धरातल पर फैल जाता है । इसमें जीव-जंतु, जड़-चेतन, सब आलोकित हो रहे हैं । सुन्दर-कुरुप, मनोहर-भयावह सब साफ दिख रहा । सूर्य के प्रकाश में एक ओर स्वर्ण कलश या त्रिशूल अथवा भगवा झंडा वाले सुन्दर मंदिर चमक रहे हैं । रेल लाइन के किनारे की गुमटियों में तारघर का काम चलता है ।

शाम के समय का दृश्य गाँव में भिन्न है । गाँव की गायें चरने के बाद लौट रही हैं । पगडंडी पर धूल उड़ रही हैं । हरी घास, फूलों की क्यारी मन मोह लेती हैं । जब कि महानगर का औद्योगिक रूप बिगड़ रहा है । वह धुंवा सब को निगल धुंधला करने की क्षमता रखता है । कोई किवाड़ खोल देता है । दिन में अंधेरा छा जाता है । सूरज को चुनौती दी जा रही है कि हमारे धुँए के सामने रश्मिरथी तुच्छ है ! उसका आधिपत्य सब पर है । वह ऐसा शिकारी(आखेटक) है जिसके लिए कोई भी जीव-जन्तु, पशु-पक्षी अबध्य नहीं । वह कुछ भी भक्षण कर सकता है ।

2.3.2. काव्य सौन्दर्य :

यह कविता नये... प्रयोगवादी ढंग पर लिखी है । कवि ने सूर्य को (उगते सूर्य को) बावरा अहेरी कहा है । यह पूरी तरह एक प्रतीकवादी कविता है । भोर का सूरज नये कवि का प्रतीक कहा जा

सकता है । यह कवि लीक से हट कर चलता है, परंपरा और रूढ़ि को भग्न करता है । स्पष्ट देख सकते हैं कि अज्ञेय ने यहाँ विषय और शिल्प दोनों में परंपरा की लीक से हटकर काम किया है । नये कवि और नई कविता का मुक्त भाव से स्वागत कर रहे हैं । नया कवि किसी विषय को अछूत नहीं मानता । विषय की विविधता का दायरा काफी बड़ा है । कवि ने सूरज को अहेरी के रूप में चित्रित कर पूरा एक सांगरूपक अलंकार रख दिया है । फिर भी कवि ने भाषा सहज और सरल रखी है ।

नई कविता के रूप में यह भाषा को चुनौती है । एक ओर संस्कृतनिष्ठ भाषा है, उसे नये संदर्भों में रखा गया है । दूसरी ओर लोक परंपरा के शब्दों को रखा है । कर्णिकार, पुष्पिताग्र जैसे शब्द बहु प्रचलित नहीं हैं । कवि ने देशज या बोलचाल की भाषा भी साथ-साथ रखी है । यहाँ पर देशज शब्दों से कवि को कोई परहेज नहीं है । इनमें करारा व्यंग्य झलक उठता है ।

इस संकलन में अज्ञेय जीवन दर्शन पर गहरी चर्चा करते हैं । वे उत्तरार्ध में प्रकृति का चित्र आंकते हैं । कुछ व्यंग्य कवितायें संकलित हैं । अज्ञेय का प्रेमभाव कुछ कविताओं में व्यक्त हुआ है । प्रयोगवादी कवि का यह विविध भावों वाला संकलन अति विशिष्ट है । इसमें सर्वाधिक चर्चित कविता 'बावरा अहेरी' ही रही है । क्योंकि इसमें कवि मिथक को अभिनव ढंग से प्रस्तुत करता है । प्रयोगों के दौर में अज्ञेय ने कवि को व्याप्ति और उसके भाषा शिल्प को महत्व देकर सूर्य के साथ खूब सहज भाव से प्रस्तुत किया है ।

2.3.3. शब्दार्थ :

बावरा = अल्हड़, भोला । अहेरी = आखेटक । लाल लाल कनियाँ = प्रात: कालीन लाल किरणें । जाल = शब्द -जाल के लिए प्रयुक्त । परेवे = कबूतर आदि पक्षी । नाटी = ठिंगनी । उपयोग - सुन्दरी = जिसका उपयोग ही उसका सौन्दर्य है । बेपनाह = असुरक्षित । पुष्पिताग्र = फुनगियों पर फूल । कर्णिकार = कनेर के फूल, निर्गंध हैं, पर रंग है । कल -मशीन, कारखाना । तचि = पतली, सूक्ष्म । अवध्य = जिसे मारा नहीं जा सकता । दुबकीछोड़ कर = छुपी हुई छोड़ । खंडहर = उजाड़ । शिरा - शिरा = सारी शिरायें । आलोक की अनी = प्रकाश की नोंक । ढाह = गिरा कर । ढूह = मिय्टी का ऊँचा ढेर । मांज जा = स्वच्छ कर जा । आँज जा = अंजन आँख में लगाने की तरह दृष्टि को स्वच्छ कर दे । सिरोपा = सिरोपाव, सम्मानित करने के लिए प्रदान किया वस्त्र(उपढौकन) । कनक तार = सुनहले तार

2.3.4 अभ्यास प्रश्न :

दीर्घउत्तर मूलक प्रश्न :

i)'बावरा अहेरी' कविता का भाव स्पष्ट कीजिए ।

ii) 'बावरा अहेरी' के लक्ष्यार्थ पर प्रकाश डालिए

iii) प्रयोगवादी कविता के रूप में 'बावरा अहेरी' की समीक्षा कीजिए ।

संक्षिप्त उत्तर मूलक प्रश्न :

क) 'बावरा अहेरी' किसका प्रतीक है ?

ख) 'बावरा अहेरी' में प्रयुक्त रूपक को स्पष्ट कीजिए ?

ग) 'बावरा अहेरी' किस-किस पर जाल बिछाता है ?

घ) 'बावरा अहेरी' को देख मन में क्या भाव उमड़ता है ?

अतिलघूत्तरी प्रश्न :

च) 'बावरा अहेरी' किस संकलन की कविता है ?

छ) जब जाल खींचता है, किसे बांध लेता है उचित शब्द चुनिये

i) एक को, ii) दो को , iii) सभी को, iv) किसी को नहीं

ज) कवि क्या करने कह रहा है अहेरी को, उचित कथन चुनिये :

i) शिरा शिरा छेद दे आलोक की अनी से अपनी ।

ii) खोल दे कपाट ।

iii) कृतज्ञता भर दे ।

iv) सिरोपा पहना दे ।

झ) खाली स्थान भरिये :

आँखें .... (आंज जा, मांज जा)

ञ) छोटी -छोटी (चिड़ियाँ, परेवे, पंखी)

व्याख्या के प्रसंग :

i) और दूर कचरा जलाने वाली ...... अहेरी को हरा देंगी ।

ii) मेरी आँखें आंज जा ...... बावरे अहेरी

2.3.5 सहायक ग्रंथ :

1. कविता के नये प्रतिमान : डॉ. नामवर सिंह

2. हिंदी कविता की संवेदना और विकास : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी

3. आज के लोकप्रिय कवि अज्ञेय : डॉ. विद्यानिवास मिश्र

बावरा अहेरी

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ :
छोटी-छोटी चिड़ियाँ, मँझोले परेवे, बड़े-बड़े पंखी
डैनों वाले डील वाले डौल के बेडौल
उड़ते जहाज,
कलस-त्रिशूल वाले मंदिर-शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल घुस्सों वाली उपयोग-सुन्दरी
बेपनाह काया को :
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुँए को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक -खची तन्वि रूप-रेखा को
और दूर कचरा जलाने वाली कल की उद्दंड चिमनियों को, जो
धुँआ यों ऊगलती हैं मानों उसी मात्र से अहेरी को हरा देंगी !

बावरा अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नहीं तुझे, सब आखेट है :
एक बस मेरे मन -विवर में दुबकी कलौंस को
दुबकी ही छोड़ कर क्या तू चला जायगा ?
ले, मैं खोल देता हूँ कपाट सारे
मेरे इस खँडहर की शिरा-शिरा छेद दे आलोक की अनी से अपनी,
गढ़ सारा ढाह कर ढूह भर कर दे :

विफल दिनों की तू कलौंस पर माँज जा
मेरी आँखें आँज जा
कि तुझे देखूँ
देखूँ और मन में कृतज्ञता उमड़ आये
पहनूँ सिरोपे से ये कनक-तार तेरे -
बावरा अहेरी ।

***

UNIT - III

1. मुक्तिबोध- 'अंधेरे में'

2. धूमिल- 'मोचीराम'

इकाई - III (मुक्तिबोध: अंधेरे में ; धूमिल : मोचीराम)

विषय सूची

3.1 मुक्तिबोध : अंधेरे में

3.1.1 कवि परिचय

3.1.2 अंधेरे में का कथ्य

3.1.3 काव्य वैशिष्ट्य

3.1.4 कुछ शब्दार्थ

3.1.5 अभ्यास प्रश्न

3.1.6 उपयोगी ग्रंथ

3.2 धूमिल : मोचीराम

3.2.1 कवि परिचय

3.2.2 मोचीराम का कथानक

3.2.3 कविता का मर्म और वैशिष्ट्य

3.2.4 कुछ शब्दार्थ

3.2.5 अभ्यास प्रश्न

3.2.6 सहायक ग्रंथ

इकाई -III
मुक्तिबोध

3.1 मुक्तिबोध 'अंधेरे में' :

यद्यिपि अज्ञेयजी ने अपने तार सप्तक के संकलन में 'मुक्तिबोध' को शामिल किया, पर वे आगे चल कर प्रयोगवादी धारा से हट गए । उनके विचारों में प्रगतिवादी खेमे का ज्यादा रंग दिखाई पड़ा । अत: उन्हें प्रगतिशील कवियों की सूची का अग्रणी कहा गया । हालांकि कोई संकलन प्रकाशित करने में वे समर्थ नहीं हुए, पर अपनी रचना धर्मिता के कारण चर्चा में आ सके थे । अत: जीवन के कटु अनुभवों को उन्होंने फेंटेसी रूप में लंबी कविता लिखी । काफी अर्सा भी लगा । 1965 में अंतिम रूप दिया गया 'अंधेरे में' कविता को ।

3.1.1 कवि परिचय :

मुक्तिबोध का पूरा नाम गजानन माधव 'मुक्तिबोध' था । 1917 को उनका जन्म श्योपुर कला (ग्वालियर) में हुआ । मूलत: वे महाराष्ट्रीय ब्रह्मण थे । 1938 ई. में बी.ए. पास किया । आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग में जीवन बिताया । पत्नी शांताबाई थी । विवाह गैर पारंपरिक ढंग से किया । अपने इन्हीं उग्र विचारों के कारण जाति से बाहर होना पड़ा । समाज में विरोध भी हुआ । उज्जैन, शुजालपुर आदि स्थानों पर शिक्षक रहे । 1954 में एम.ए. करने के बाद वे कुछ समय कालेज अध्यापक रहे । बाद में 'हंस' पत्रिका में नौकरी करने बनारस आये । बाद में आल इंडिया रेडियो, नागपुर के समाचार विभाग में अवस्थापित हुए । परंतु अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण ज्यादा दिन नहीं रहे ।

वैसे प्रकृति से कभी उग्र नहीं रहे । शांत एवं सज्जन स्वभाव के कारण मुक्तिबोध का काफी आदर था । हिंदी साहित्य जगत में स्फुट रचनाओं से ही प्रसिद्ध हो चुके थे । अंतिम दिनों में गंभीर बीमारी की हालत में दिल्ली ले जाया गया । वहाँ से उनके घर आकर उनकी फाइलों से कुछ कविताएँ चुनी गई । भारतीय ज्ञानपीठ ने तुरत प्रकाशन दायित्व सम्हाला । इस प्रकार 'चाँद का मुँह टेढ़ा' कविता संकलन का मुद्रित रूप देख सके । उसके कुछ ही दिन बाद 1964 में मुक्तिबोध का देहावसान हो गया । दर असल उनका मूल्यांकन उसके बाद (ग्रंथ प्रकाशन) ही होना शुरू हुआ । आज तक विश्लेषण - विवेचन जारी है ।

1942 में जो दमनलीला चली, भारतीय जनता में उससे उथल-पुथल मच गई । बुद्धिजीवी वर्ग भी तिलमिला उठा । उस वक्त काव्यालोचन छायावाद और प्रगतिवाद दोनों के बीच से उभर कर नया रूप ले कर उभरा । इसे प्रयोगवाद कहा गया । इसके दौरान सप्तक परंपरा का श्रीगणेश हुआ । मुक्तिबोध और अज्ञेय दोनों ही अमिट हस्ताक्षर थे । इसमें मुक्तिबोध को मार्क्सवादी कहने में कुछेक द्विमत हो सकते हैं । परंतु मानववादी कहने में कोई संदेह नहीं रह जाता । वे मानव की कुत्सितता का वर्णन करने में अप्रतिम रहे । उधर जीवन के भव्य रूप में अपनी दृष्टि रखते थे । इसलिए रामविलास शर्मा उन्हें भरपूर आदर देते । वे जटिल और संवेदनाओं के संप्रेषण में सफल रहे । वे अनुभूतियों साथ-साथ अभिव्यक्ति में भी स्पष्ट थे ।

मुक्तिबोध में 'फेंटेसी और रूपक तथा प्रतीकों' का प्रयोग माध्मम के रूप में भरपूर हुआ है । 'चांद का मुँह टेढ़ा' संकलन में ज्यादातर लंबी कविताएँ हैं । साधारण पाठ करने पर यहाँ कवि का रूप रूखा, विवरण से भरा, अस्पष्ट और अजीब -सा तथा अरुचिकर लगता है । कवि की मस्तष्क की उपज सशक्त और उर्वर लग रही है । इसमें अनेक सजग और प्रौढ़ कल्पनाओं का समाहार है । मुक्तिबोध के काव्य में 'फेंटेसी' को 'अनुभव की कन्या' कहा है । परिस्थितियों के अंधकार में उनकी बुद्धि असमर्थ है । फेंटेसी का सहारा उन्हें भावभिव्यक्ति का सारा समर्थन व्यक्त कहा है । चांद का मुँह टेढ़ा दिखता है । गहरी वेदना होती है कि चांद जैसा सौन्दर्यपूर्ण एवं प्रकृति का रूप है, वह विकृत रूप में है । यहाँ पर मुक्तिबोध लंबे-लंबे विवरणों से पाठक में ऐसा बिम्ब जगा रहे हैं कि जीवन की महत्वपूर्ण स्थिति का चित्र उभर आता है । इन भावों को रूप देने में अज्ञेय के बिम्ब और उनकी ध्वनियाँ हृदय में निरंतर गूंजती हैं । वे सुन्दर उपमानों का प्रयोग कर भावों को तीक्ष्ण रूप में अभिव्यक्त कर रहे हैं । 'चांद' उन्हें गंजा दिखता है । चांदनी उन्हें राख लग रही है, बादल का टुकड़ा कवि के शब्दों में रजाई का चिथड़ा है । देश की ह्रासोन्मुख सभ्यता और विखरी संस्कृति के दौर में वे ईमानदारी से अभिव्यक्ति देते हैं । आतंककारी बावड़ी, डरावना बीहड़, भयंकर घाटी, कोहरे से ढके तिलस्मी पहाड़ हैं । यह दर्दीला और भयावह वातावरण कवि यथार्थ के करीब पहुँचने हेतु प्रस्तुत करता है ।

कवि प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है । प्रकृति की हर गति के साथ गति करता है, और व्यापार में आत्मीयता दिखा रहा है ।

'सुन रहा हूँ मैं वही
पागल प्रतीकों में कही जाती हुई
वह ट्रजिडी
जो बावड़ी में अड़ गई ॥'

परंतु यह चित्र पारंपरिक प्रकृति चित्रण नहीं । वह 'ट्रजिडी' की बात लाकर अपनी भावधारा को स्पष्ट कर देते हैं ।

3.1.2. 'अंधेरे में' का कथ्य :

'अंधेरे में' मुक्तिबोध की सबसे लंबी कविता है । लगभग चालीस पृष्ठों की 'कवि केंद्रित' भाव प्रधान कविता है । कथानक बहुत संक्षिप्त है । कवि ने पहले इसे 'आशंका के द्वीप' नाम दिया था । परंतु बाद में कुछ बदलाव के साथ शीर्षक भी इसके व्यापक संदर्भ को लेकर 'अंधेरे में' बदला ।

कवि को लगता है देश में फासिष्ट हुकूमत लगी है । इस समय सचेत और प्रगतिशील मध्यवर्गी बुद्धिजीवी का आत्म संघर्ष चल रहा है । कवि को रात के अंधेरे में आशंका के द्वीप दिखाई दे रहे हैं । फासिष्ट शासन का मतलब 'मार्शल लॉ' है । फौजी शासन को जनक्रांति को कुचलने लगाया जाता है ।

जुलूस चल रहा है । रहस्यमय इस अर्थ में है कि यह सैनिक जुलूस नहीं । फेंटेसी के तौर पर कवि उन्हें स्पष्ट कर रहा है । जो फासिस्ट हुकूमत का समर्थन कर रहे हैं । नायक उन्हें इस बैंडपार्टी में देखकर आश्चर्य प्रकट करता है । ये आलोचक, विचारक, कवि, मंत्री, उद्योपति, विद्वान एवं अपराधी -सब हैं । दिन में साधारण दिखते हैं । जुलूस में कवि असली चेहरा दिखा कर नंगा कर देते हैं । छुपे हुए उद्देश्य स्पष्ट हो जाते हैं । अत: कवि को लगता है यह कोई मृत्युदल चल रहा है - जनता के हत्यारों का दल है । अत: उस पर यह गिरोह खीझ कर मार डालने पर उतारु हो जाता है । समझ जाता है कि मैंने इनको नंगई में देख लिया है, इसकी सजा जरूर देंगे ।

सैनिक जुलूस देखकर जनता भयभीत हो रही है । कवि टैंकों का दस्ता देख रहा है । वह जनक्रांति का नायक है । परंतु इसके सामने वह अजेय है । (क्रांति का) पर्चा पढ़कर सर्वत्र सचेत् उपस्थित दर्ज करा रहा है । उनका विश्वास है कि फासिष्ट शासन को सशस्त्र संघर्ष से ही समाप्त किया जा सकता है । भौतिक शक्ति को भौतिक शक्ति ही पराजित कर सकती है । यह उत्थान अब दबाया नहीं जा सकता । यह जनता की क्रांति है । पार्टी की नहीं । काव्य नायक इसका द्रष्टा है । इस बीच कवि की गांधी से भेंट होती है । वे कहते हैं -''नेता आकाश से नहीं टपकता । जीवन निर्माण करने वाली शक्ति का प्रतिनिधि है । वह देखता है कंधे पर एक शिशु (जन शिशु) है जो रो पड़ता है । चुप कराने पर और ज्यादा रोता है । यह रुदन विस्फोटक, शिकायतपूर्ण है । क्रोधभरा है । अचानक वह गायब हो गया । वहाँ पर सूरजमुखी फूल का गुच्छा दिखता है । वह फिर बंदूक में बदल जाता है । याने जनता फूल है, वह बंदूक में बदल सकती है ।

काव्य नायक गिरफ्तार हो जाता है । उसकी पिटाई हो रही है । इससे उसका संकल्प और भी दृढ़ होता है । क्रांति के दृश्य दिखते हैं । शारीरिक यातना दी जाती है । लेकिन महसूस नहीं करता । देह की सीमा को मन अतिक्रमण कर जाता है । वह रिहा होकर देखता है क्रांति शुरू हो चुकी । वह उन कार्यवाहियों में लग जाता है । मन में आशा और विश्वास भर जाता है । दिशा और काल सब पहुँच में है । स्वप्न अब कर्म के सहारे मूर्तिमान हो रहे हैं । जीवन विकास की मंजिल पर पहुँच रहा है । कवि

कहते हैं अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने होंगे ये मठ और गढ़ (पूंजीवाद के) तोड़ने होंगे ।

कवि को लगता है लोग दबी संवेदना और अनुभव पीड़ाओं को लेकर बढ़ रहे हैं । वह कहता है कि पूंजी से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता और स्वातंत्र्य व्यक्ति जनमन को छल नहीं सकता .... क्रांति हो गई, दबाने की कोशिश भी चल रही ।

स्वप्न टूटता है । चारों ओर प्रकाश फैल गया है । जो व्यक्ति स्वप्न में दिखा, वह अब बाहर सड़कों पर भीड़ में दिख रहा है । फिर अदृश्य हो जाता है । 'परम अभिव्यक्ति' है । वह काव्य पुरुष ही गुरु है । वह अपने को उसका शिष्य कहता है । वह जग में घूमता है अविरत । अत: कवि हर चेहरे में उसे तलाश रहा है । हर मानवीय स्वानुभूत आदर्श, विवेक क्रिया में खोजता है । पठार, पहाड़ और समुद्र सर्वत्र खोज रहा । वह आत्मसंभावना उसकी परम अभिव्यक्ति है ।

3.1.3. काव्य वैशिष्ट्य :

मुक्तिबोध का प्रादुर्भाव प्रयोगवादी काव्य के दौर में होता है । परंतु फिर वे क्रमश: प्रगतिशील कविता की ओर मुड़ते हैं । मानवीय चेतना और मानव संघर्ष में विश्वास गहरा है । कहा जाता है कि एक्सप्रेस मिल के मजदूरों पर जब गोली चलाई गई तो कवि विकल हो उठते हैं । यही संवेदना काव्य रूप में आकार लेती है । नागपुर के जीवन का सारा संदर्भ इसमें समेटा गया है । कवि सदा पत्रकारिता, श्रमजीवी समाज और राजनीतिक-साहित्यिक चर्चाओं के बीच रहता । अपने समय में कवि चारों ओर अंधकार देखता है । उसीमें से फेंटेसी रूप में विभिन्न घटनाएँ, पात्र, परिस्थितियाँ उपजती हैं । इसी अद्‌भुत रूप का काव्यात्मक दस्तावेज है । यहाँ अनेकानेक बिम्ब, प्रतीक, संकेत और संदर्भ प्रस्तुत किये गए हैं । 'अंधेरे में' इन सबकी हलकी, मध्यम और तीव्र गूंज सुनाई दे रही है । शमशेर का कहना है -'' यह कविता देश के आधुनिक जनइतिहास का, स्वतंत्रतापूर्व और पश्चात का दहकता इस्पाती दस्तावेज है । इसमें अजब और अद्‌भुत रूप से व्यक्ति और जन का एकीकरण है । देश की धरती, हवा, आकाश और देश की सच्ची मुक्ति आकांक्षा नस-नस में फड़क रही हैं ... भावनाओं के अनेक स्तरों में ।''

अंधेरा - जीवन रूपी कमरों में अंधकार भरा है । यहाँ कोई कदमों की आहट हो रही है । पता नहीं चलता यह कौन है ।

भीतरी दीवार का पलस्तर झरता है । दीवार पर कोई चित्र उभरता है । कौन है ? क्या हमारे आदि पुरुष मनु का चेहरा है ?

कवि के अधिकांश बिम्ब लाल रंग के हैं । लाल मशाल, लाल कोहरा और लाल प्रकाश इसे स्पष्ट कर रहे हैं जो व्यक्ति उभर कर आता है वह स्वयं काव्यपुरुष है ! अंदर का जो व्यक्त नहीं हो पा

रहा, वह अंधेरे में व्यक्त हो रहा है । इसमें आत्मा से साक्षात्कार कुछ समय होता है । फिर तो सूनापन कांपने लगता है । शब्द रूपी लहरें हृदय की अवचेतनता को दूर करने में प्रयत्नशील हैं । शायद अपनी आत्मा ही यहाँ सच्ची बात पर काव्यपुरुष अंधकार के दोनों किनारे टटोल कर आगे बढ़ता है । यथार्थ की धरती तो दिख ही नहीं रही । वह पुरानी और व्यर्थ हुई भावना - परंपरा और अवधारणा छोड़ नये परिवेश की बात कर रहा है ।

कवि की अंतश्चेतना में द्वंद्व है, वह गहन निद्रा है या नवजागरण का प्रारंभ - वह नहीं समझ पा रहा । रात के समय का वातावरण । अचेतन मन में किसी ऐसी भयानक घटना का संदेह है जिसकी कभी आशंका ही न थी । कवि की चिंता घनी है ।

जुलूस और बैंड बाजा ! यह प्रतीकात्मक स्थिति है । संपन्न और सत्ता की शक्ति का गणित है । यहाँ कवि भय और विद्रूप का चित्र दे रहे हैं ।

कवि ने उन जीवितों को मृतात्मा -प्रेतत्मा की तरह देखा है जो षडयंत्रकारी है । जनसाधारण के स्वार्थों से गद्दारी कर रहे हैं । रात के अंधेरे वाले दिन के उजाले में कवि के शब्दों में अपना चरित्र लेकर नंगे हो रहे हैं । मानव जीवन का यह अंतर्विरोध उन्हें आश्चर्य में भर देता है । कवि स्वयं से पूछ रहा है, लेखा मांग रहा है कि सामाजिक प्राणी रूप में किसकी मदद की ? बुद्धि को निष्क्रिय कर दिया । इस प्रकार निष्क्रियता में उन्नति और प्रगति रुक जाती है ।

कवि विद्रूप उभारने हेतु अनेक प्रतीकों का सहारा लेता है । जैसे बंदूक की आवाज, पैरों में तेज गति, गुफा-सी गलियों में घुस जाना, गांधी -तिलक का दिखना, शिशु का कंधे से गायब होना, रक्त रंजित मणियाँ, घोर कुहासा, पीठ पर तेज चाबुक की मार, पृथ्वी पर पड़े चमकीले पत्थर, मठ और गढ़ तोड़ना, भीड़ का रेला, लुहार जैसे ज्वेलंत प्रतीकों का प्रयोग हुआ है ।

इस प्रकार मुक्तिबोध ने लंबी कविता में यहाँ बिखरी-सी लगती भावाभिव्यक्ति में गहरे संयुक्त चित्र को प्रस्तुत किया है । कुछ वस्तु, कुछ घटना और कुछ लोगों को लेकर प्रतीकों का अत्यंत समृद्ध प्रयोग किया है ।

3.1.4. **कुछ शब्दार्थ :**

भीत -पार = दीवार के उधर । अनिवार = जिसे टोका न जा सके । हनु = ठोड़ी । कुहरीला = कोहरे की तरह । अंतराल बिवर के तम में = अंतर्मन की गहराई में । खड़ी पाई = पूर्ण विराम । तिलस्मी = जादुगरी । अवसर -अनवसर = मौके -बिना मौके । पर्वत संधि = दो पहाड़ों के बीच जुड़ने का स्थान । विचरण =पहरा । पलातक = पलयान करना । केंद्रीय संवेदन = मूल भाव ।
कोलतार पथ = डामर से बनी सड़क । वारदात = दुर्घटना । अवचेतना = चेतन और अचेतन के बीच

की मानसिक स्थिति । क्विक मार्च = तेज चाल । कलाबत्तू = सुहरा धागा । अस्थिरूप = हड्डियों का ढांचा । यकृत स्वरूप = कलेजे की तरह । दीर्घ पांत = लंबी लाइन । आर्टिलरी = तोपखाना । केंवेलरी = घुड़सवार सेना की टुकड़ी । कौलतारी = काली । भैरव = भयावह । एकाग्रह दृष्टि = एकटक देखना । भूतपिशाचकाय = भूत-पिशाच की तरह काया । फिरकी = चक्री । गजर = घंटा । वाल्मीक = दीमक से बना ढूह । लीकें = लकीर । खकारता = खांसता । फैसाव = फंसना । सांस लगी है = हांफ रहे हैं । जीभ निकल रही = भागते हुए परेशान । तलखोर अंधेरा = गुफा के नीचे का अंधकार । चिथड़े= फटे कपड़ों के टुकड़े । आत्मोदबोधमय = आत्मा के जागरण के ज्ञानपूर्ण । वाकई = दर असल । करुणासाल = करुण रस से भरे । उदरम्भरि = अपना पेट भरने वाला । कनात = कपड़े का द्वार जो दीवार बनाने के काम लिया जाता है । असंग = लगाव रहित । तलघर = तहखाना । मुँह मोड़गए = साथ नहीं दिया । टेरियार = आतंक मचाने वाले लोग । सिर गरम है = क्रोध में है । अवलि = पंक्ति । आलोचन = गुण-दोष पर चर्चा । अजीगर्त = वैदिक ऋषि शुन:शेव के पिता दिन में पागल रहना, रात में व्यक्तित्व सामान्य होना । मार्शल लॉ = फौजी कानून । निष्क्रिय संज्ञा = निकम्मेपन की पहचान । दुर्घट = बुरे ढंग से होना । क्षालित = धुला होना । मुंदे हुए = बंद । प्राकृत = स्वाभाविक । तेजस्क्रिय = तेज में गतिशील, प्रकाश करना । द्युतियाँ = रोशनियाँ । गुहावास = गुफा में रहना । जनपयोग =लोगो के उपयोग में आना । विवर = छेद । चौराहा = चार रास्तों का मिलन स्थल । अनपेक्षित = अनच्चित । मितली = उबकाई । बास = दुर्गन्ध । कोलतार =डामर । पाषाण पीठिका = पत्थर की चौकी । बुद बुदा रहा = धीमे-धीमे बोलना । सुराग -रसी = भेद जानना । गुजर गये जमाने के = अतीत के । कुक्वुट = मुर्गा । मसीहा = उद्धार करने वाला । मिट्टी का लौंदा = मिट्टी का गीला टुकड़ा । किरसीले = उपजाऊ । आत्मा का पिंजर = देह । ठठरी = ढांचा । द्युति पुरुष = दिव्यपुरुष । खोहो -तेहो = गुफा । स्फोटक = विस्फोट । अधभूली = आधी विस्मृत । थाला = पेड़ के चारों ओर बत घेरा जहाँ पानी भरे । स्वर्णपुष्पों = सुनहरे फूल । कत्थई = कत्थे के रंग का । जीवनानुभव = जीवन में मिला अनुभव । वेदना भास्कर = सूर्य की तरह संवेदनावाला । अंतर्तत्वों = मन के विचार । अस्थि कवच = हड्डी का आवरण । शिरा = अथुरक्तवाही नस । रग = शुद्ध रक्तवाही नस । फुरफुरी = धड़कन । खिफलाई = खीझ में भरी । थोरोली = अपनापन । प्रभंजन = आंधी । रिहा = दोढ़ना । भौंही की जीबे के छेद = आँखों की जगह के छेद । रेडियो एक्टीव = रेडियोधर्मी किरणें बिखेरने वाला । ज्वलन = जलती हुई । हिमशीत = बर्फ के समान ठंडा । पश्चाद् पद = पीछे चलने वाला । तइरक दलों = तारों के झुंड । दिक्काल = दिशाएँ और समय । परिणत = बदली हुई । कर्मशिलाएँ = पत्थ- से दृढ़ कर्म । जिन्दगी -सरहद= जीवन की सीमा । मरा हुआ सुनसान = मौत का सा सन्नाटा । गढ़े जाते = झूठ बनाना । जनमन उर शूर = जनता का मन जीते । उद्भास = बताने वाला । गटर = जमीन के नीचे

गंदे पानी का नाला । स्प्लिट = खिसकते हुए । पत्थर ढोकों = पत्थरों से रूकावट । सोंटा = डंडा । प्रामाग्नि बम = प्राण अग्नि वाला बम । अनिकर = न रुकने वाला । घन = बड़ा हथौड़ा । अनेपेक्षित = बिना चाहा । विद्युत्तरंगीय = बिजली की तरंग-सी । बेमाप = अमाप । गैलरी = मकान में गलियारा । अनखोजी = बिना तलाशी । तड़ितरंगीन = बिद्युत तरंगों सम । स्वानुभूत = अपनी अनुभूति में । क्रियागत = क्रिया से संबंधित । आत्म -संभवा = मुझ से उत्पन्न होने वाली ।

3.1.5. अभ्यास प्रश्न :

कुछ व्याख्या के योग्य अंश :

i) इतने में अकस्मात ..... कोई मनु ।

ii) वह रहस्यामय व्यक्ति ..... आत्मा की प्रतिक ।

iii) कहता है पार ..... मुझे चाहे जो चलें हो ।

iv) सूनी है राह ..... कोई नहीं बाहर ।

v) विचित्र प्रोसेसन ..... इस बैंड दल में ।

vi) भाई वाह । ..... किसी मृतक - दल की ।

vii) एकाएक मुझे ..... है लगातार ।

viii) मेरा सिर गरम है ..... सिर फिरा विक्षप्त मस्तिष्क ।

ix) हाय !ाय ! मैंने उन्हें ..... काल टहलता है ।

x) विवेक चलाता ..... सोचने विचारने ।

xi) कहाँ है पश्चत् ..... हिम थोरोली ।

xii) रिहा ! ..... सुझाव संदेश भेजते रहते ।

xii) अब भिव्यक्ति के ..... नील जल में है ।

xiv) आसमान झांकता है ..... पारिजात पुष्प महकते ।

xv) सब चुप, साहित्यिक ..... कहीं गोली चल गयी ।

xvi)अनखोजी निज समृद्धि ..... वह है ।

दीर्घ उत्तर मूलक प्रश्न :

क) 'अंधेरे में' कविता के कथ्य पर प्रकाश डालिये ।

ख) प्रयोगवादी कविता के रूप में 'अंधेरे में' की समीक्षा कहीर्साजिए ।

ग) लंबी कविता के रूप में 'अंधेरे में' पर विचार कीजिए ।

घ) 'अंधेरे में' के काव्य वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिये ।

ङ) 'अंधेरे में' को फेंटेसी के रूप में स्पष्ट कीजिए ।

च) 'अंधेरे में' मुक्तिबोध की बौद्धिकता पर प्रकाश डालिए ।

छ) 'अंधेरे में' में स्वाधीनोत्तर भारत का कैसा चित्र है ? स्पष्ट कीजिए ।

लघूत्तरी मूलक प्रश्न :

ट) 'अंधेरे में' स्वप्न में कवि क्या देखता है ?

ठ) 'अंधेरे में' कोई व्यक्ति घूमता है .... उसका परिचय दीजिए ।

ड) 'अंधेरे में' कवि मार्शल लॉ की बात करते हैं - स्पष्ट कीजिए ।

ढ) 'अंधेरे में' बुद्धिजीवियों पर टप्पणी की है - उसे स्पष्ट कीजिए ।

ण) 'अंधेरे में' सांकल बजाने वाले दृश्य का वर्णन कीजिए ।

अतिलघूत्तरी प्रश्न :

त) 'मुक्तिबोध' का पूरा नाम लिखिए ।

थ) 'मुक्तिबोध' किस राजनैतिक विचारधारा के थे ?

द) 'अंधेरे में' कविता किस संकलन में छपी थी ?

ध) 'मुक्तिबोध' कित 'तार सप्तक' में संकलित किये गए ?

न) 'विचत्रि अनुभव !'' ... किसे होता है सही उत्तर दीजिए

i) कवि को ii) जनता को

iii) शासक को iv) किसी को नहीं

प) अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे ....

पंक्ति निम्न में से सही अंश चुनकर लिखिये :

i) फेकने होंगे ii)गढ़ने होंगे

iii) उठाने होंगे iv)इनमें कोई नहीं

फ) 'अंधेरे में' कविता का पहले क्या शीर्षक था - सही उत्तर चुन कर लिखिए :

i) 'आशंका में' ii)रक्तालोक स्नान पुरुष

iii) लाल क्रांति vi)इनमें कोई नहीं ।

ब) 'रक्तालोक स्नात पुरुष' कौन है, उचित उत्तर चुनिये :

iii)मजदूर　　iv)कवि

v)नेता　　vi)इनमें कोई नहीं ।

भ) 'अंधेरे में' वर्णन है - उचित उत्तर चुनिये :

i) फसिस्ट सत्ता का　　ii) धार्मिक सत्ता का

iii)महायुद्ध का　　vi)इनमें कोई नहीं ।

म)'आत्म संभवा' यह पद अंधेरे में कहा आता है ?

i) प्रारंभ में　　ii)मध्य में

iii)अंत में　　vi) कहीं नहीं ।

3.1.6 **उपयोगी ग्रंथ :**

1. 'मुक्तिबोध' : मूल्यांकन - श्री विश्वंभर मानव
2. लक्षित मुक्तिबोध - शरद कोठारी
3. 'भारत -इतिहास और संस्कृति : मुक्तिबोध
4. हिन्दी साहित्य में संवेदना और विकास - डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी
5. मुक्तिबोध : पुनर्मूल्यांकन - डा. रामविलास शर्मा ।

अंधेरे में

(यहाँ इस कविता का जो पाठ प्रस्तुत है वह 'कल्पना' तथा 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में प्रकाशित पाठों से भिन्न है और कवि द्वारा इन दोनों पाठों में किये गये संशोधन पर आधारित पांडुलिपि के अनुसार है ।)

1.

जिन्दगी के ...

कमरों में अंधेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार ;

आवाज पैरों की देती है सुनायी
बार-बार .... बार-बार
वह नहीं दीखता .... नहीं ही दीखता,
किन्तु वह रहा घूम
तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक ;
भीत-पार आती हुई पास से,
गहन रहस्यमय अन्धकार -ध्वनि -सा
अस्तित्व जनाता
अनिवार कोई एक,
और मेरे हृदय की धक-धक
पूछती है - वह कौन
सुनायी जो देता, पर नहीं देता दिखायी !
इतने में अकस्मात् गिरते हैं भींत से
फूले हुए पलस्तर

झरती है चूनेभरी रेत
खिसकती है पपड़ियाँ इस तरह-
खुद-ब-खुद
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,
स्वयमपि
मुख बन जाता है दिवार पर
नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु :
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति ।
कौन वह दिखायी जो देता, पर
नहीं जाना जाता !!
कौन मनु ?

बाहर शहर के, पहाड़ी के उस पार तालाब....
सब तरफ अँधेरा
प्रशान्त जल,
पर भीतर से उभरती है सहसा
सलिल के तम-श्याम शीशे में कोई श्वेत आकृति
जहरीला कोई बड़ा चेहरा फैल जाता है
और मुसकाता है,
पहचान बताता है,
किन्तु, मैं हतत्प्रभ,
नहीं वह समझ में आता ।

अरे ! अरे !!
तालाब के आस-पास, अंधेरे में वन-वृक्ष
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे अचानक
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,

शाखाएँ, डालियाँ, झूमकर झपटकर
चीख, एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्
वृक्षों के अंधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलिस्मी खोह का शिला -द्वार
खुलता है धड़ से
……
घुसती हैं लाल-लाल मशाल अजीब-सी
अन्तराल -बिवर के तम में
लाल - लाल कुहरा,
कुहरे में, सामने रक्तालोक स्नात-पुरुष एक,
रहस्य साक्षात !!

तेजोप्रभामय उसका ललाट देख,
मेरे अंग-अंग में अजीब एक थर-थर ।
गौरवर्ण, दीप्त -दृग, सौम्यमुख
सम्भावित स्नेह-सा प्रिय ही साक्षात्
गहन एक सन्देह ।

वह रहस्यमय व्यक्ति
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है,
पूर्ण अवस्था वह
निज-सम्भावनाओं, निहित प्रभाओं, प्रतिभाव की
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिमा ।

किन्तु वह फटे हुए वस्त्र क्यों पहने है ?
उसका स्वर्ण-वर्ण मुख मैला क्यों ?
वक्ष पर इतना बड़ा घाव कैसे हो गया ?

उसने कारावास -दु:ख झेला क्यों ?
उसकी इतनी भयानक स्थिति क्यों है ?
रोटी उसे कौन पहुँचाता है ?
कौन पानी देता है ?
प्रचंड शक्तिमान क्यों दिखायी देता है ?

प्रश्न थे गंभीर, शायद खतरनाक भी,
इसीलिए बाहर के गुंजन
जंगलों से आती हुई हवा ने
फूँक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी ....
कि मुझको यों अंधेरे में पकड़कर
मौत की सजा दी !
किसी काले डैश की घनी काली पट्‌टी ही
आँखों पर बंध गयी,
किसी खड़ी पाई की सूली पर मैं टाँग दिया गया,
किसी शून्य बिन्दु के अँधियारे खड्डे में
गिरा दिया गया मैं

2.

सूनापन सिहरा
अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,
मेरे ही उर पर धँसाती हुई सिर
छटपटा रही है शब्दों की लहरें
मीठी है दु:सह !!
अरे हाँ, साँकल ही रह-रह
बजती है द्वार पर ।
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिए ही

बुलाता है, बुलाता है (हृदय को सहला
मानो किसी जटिल प्रसंग में सहसा
होठों पर होंठ रख, कोई सच-सच बात
सीधे-सीधे कहने को तड़प जाय, और फिर
वही बात सुनकर धँस जाय मेरा जी ....
इस तरह, साँकल ही रह-रह, बजती है द्वार पर)

आधी रात, इतने अंधेरे में, कौन आया मिलने ?
विमन प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुआ
द्युतिमय मुख -वह प्रेमभरा चेहरा -
भोला-भाला भाव -
पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है !!
यह वही व्यक्ति है, जी हाँ !
जो मुझे तिलिस्मी खोह में दिखा था ।
अवसर -अनवसर
प्रकट जो होता ही रहता,
मेरी सुविधाओं का न तनिक खयाल कर ।
चाहे जहाँ, चाहे जिस समय उपस्थित,
चाहे जिस रूप में
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत ;
इशारे से बताता है, समझाता रहता,
हृदय को देता है बिजली के झटके !!
अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबहें,
गालों पर चट्टानी चमक पठार की
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें
उसे देख, प्यार उमड़ता है नयन ।
लगता है - दरवाजा खोलकर
बाँहों में कस लूँ
हृदय में रख लूँ

घुल जाऊँ, मिल जाऊँ, लिपटकर उससे ।
परंतु भयानक खड्डे के अंधेरे में आहत

और क्षत-विक्षत मैं पड़ा हुआ हूँ ;
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूँ जरा भर
(यह भी तो सही है कि
कमजोरियों से ही मोह मुझको)
इसीलिए टालता हूँ उस मेरे प्रिय को
कतराता रहता,
डरता रहता उससे ।
वह बिठा देता है तुंग शिखर के
खतरनाक, खुरदरे कगार-तट पर ;
शोचनीय स्थिति में ही छोड़ देता मुझको ।
कहता है -'प्यार करो पर्वत -संधि के गह्वर
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो ।
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा,
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से ;
बजने दो साँकल !!
उठने दो अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले;
वह जन .... वैसे ही
आप चला जायेगा आया था जैसे ।
खड्डे के अंधेरे में मैं पड़ा रहूँगा
पीड़ाएँ समेट !!
क्या करूँ क्या नहीं करूँ मुझे बताओ ;
इस तम-शून्य में तैरती है जगत् समीक्षा
की हुई उसकी
(सह नहीं सकता)
विवेक-विक्षेम महान् उसका

तब अन्तराल में (सह नहीं सकता)
अँधियारे मुझमें द्युति-आकृति -सा
भविष्य का नक्शा दिया हुआ उसका
सह नहीं सकता ।
नहीं, नहीं, उसको मैं छोड़ नहीं सकूँगा
सहना पड़े मुझे चाहे जो भले ही ।
कमजोर घुटनों को बार-बार मसल,
लड़खड़ाता हुआ मैं
उठता हूँ दरवाजा खोलने,
चेहरे के रक्तहीन विचित्र शून्य को गहरे
पोंछता हूँ हाथ से,
अंधेरे के ओर-छोर टटोल -टटोलकर
बढ़ता हूँ आगे,
पैरों से महसूस करता हूँ धरती का फैलाव
हाथों से महसूस करता हूँ दिशाएँ
साँसों से अनुभव करता हूँ दुनिया
मस्तक अनुभव करता है आकाश
दिल में तड़पता है अंधेरे का अन्दाज,
आँखें ये तथ्य सूँघती-सी लगती,
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी ।
आत्मा में, भीषण
सत्-चित -वेतना जल उठी, दहकी ।
विचार हो गये विचरण -सहचर ।
बढ़ता हूँ आगे,
चलता हूँ सँभल-सँभलकर
पर टटोलता,
जंग-खायी, जमी हुई , जबरन
चिटखनी हिलाकर
जोर लगा, दरवाजा खोलता,

झाँकता हूँ बाहर ....
सूनी है राह अजीब है फैलाव,
सर्व -अंधेरा ।
ढीली आँखों से देखता है विश्व
उदास तारे ।
हर बार सोच और हर बार अफसोस
हर बार जिक्र
के कारण बढ़े हुए दर्द का मानो कि दूर वहाँ, दूर वहाँ
अँधियारा पीपल देता है पहरा ।
हवाओं की नि:संग लहरों में काँपती
कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवाज,
टकराती रहती सियारों की ध्वनि से ।
काँपती है दूरियाँ, गूँजते हैं फासले
(बाहर कोई नहीं, कोई नहीं बाहर)

इतने में अँधियारे सूने में कोई चीख गया है
रात का पक्षी
कहता है :
वह चला गया है,
वह नहीं आयेगा, आयेगा ही नहीं
अब तेरे द्वार पर ।
वह निकल गया है गाँव में शहर में ।
उसको तू खोज अब
उसका तू शोध कर !
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,
उसका तू शिष्य है (यद्यपि पलातक....)
वह तेरा गुरु है
गुरु है ....

3.

समझ न पाया कि चल रहा स्वप्न या
जागृति शुरू है ।
दिया जल रहा है,
पीतालोक -प्रसार में काल गल रहा है,
आस-पास फैली हुई जग-आकृतियाँ
लगती हैं छपी हुई जड़ चित्र-आकृयों-सी
अलग व दूर -दूर
निर्जीव !!
यह सिविल लाइन्स है । मैं अपने कमरे में
यहाँ पड़ा हुआ हूँ ।
आँखें खुली हुई हैं,
पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा
उदास इकहरा,
सलेट-पट्टी पर खींची गयी तसवीर
भूत-जैसी आकृति -
क्या वह मैं हूँ ?
मैं हूँ ?

रात के दो बजे हैं,
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो,
पास-पास आती हुई घहराती गूँजती
किसी रेलगाड़ी के पहियों की आवाज !!
किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयानक सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,

कहीं कोई रेल-एक्सीडेंट न हो जाय ।
चिन्ता के गणित अंक
आसमानी सलेट-पट्टी पर चमकते
खिड़की से दीखते ।
....
हाय ! हाय ! तॉल्सतॉय
कैसे मुझे दीख गये
सितारों के बीच-बीच
घूमते व रुकते
पृथ्वी को देखते ।

शायद, तॉल्सतॉय-नुमा
कोई वह आदमी
और है :
मेरे किसी भीतरी धागे का आखिरी छोर वह,
अनलिखे मेरे उपन्यास का केन्द्रीय संवेदन
दबी हाय-हाय-नुमा,
शायद तॉल्सतॉय-नुमा ।

प्रोसेशन ?
निस्तब्ध नगर के मध्य -रात्रि -अंधेरे में सुनसान
किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत तान-धुन,
मन्द-तार उच्च -निम्न स्वर-स्वन
उदास-उदास ध्वनि -तरंगें हैं गम्भीर
दीर्घ लहरियाँ !!

गैलरी में जाता हूँ, देखता हूँ रास्ता
यह कोलतार-भय अथवा
मरी हुई खिंची हुई कोई काली जिह्वा

बिजली के द्युतिमान दीये या
मरे हुए दाँतों का चमकदार नमूना !!
किन्तु दूर सड़क के उस छोर
शीतभरे थर्राते तारों के अँधियारे तल में
नील-तेज-उद्भास
पास-पास पास -पास
आ रहा इस ओर ।
दबी हुई गम्भीर स्वर-स्वप्न तरंगें,
उदास तान-धुन शत -ध्वनि -संगम-संगीत
समीप आ रहा !!

और अब
गैसलाइट पाँतों की बिन्दुएँ छिटकी
बीचोंबीच उनके
साँवले जुलूस -सा क्या कुछ दीखता !!

और अब गैसलाइट निलाई में रंगे हुए अपार्थिव चेहरे
बैण्ड -दल,
उनके पीछे काले-काले बलवान घोड़ों का जत्था
दीखता,
घना व डरावना अवचेतन ही
जुलूस में चलता ।
क्या शोभा-यात्रा
किसी मृत्यु-दल की ?

अजीब !!
दोनों ओर नीली, -गैसलाइट-पाँत
चल रही, चल रही ।
नींद में खोये हुए शहर की गहन अवचेतना में

हलचल (पाताली तल में
चमकदार साँपों की उड़ती हुई लगातार
लकीरों की बारदात !!
सब सोये हुए हैं ।
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा
रोमांचकारी यह जादुई करामात !!)
विचित्र प्रोसेशन,
गम्भीर क्विक मार्च ....
कलाबत्तूवाली काली जरीदार ड्रैस पहने
चमकदार बैण्ड-दल -
अस्थि-रूप, यकृत -स्वरूप, उदर -आकृति
आँतों के जालों-से उलझे हुए, बाजे वे दमकते हैं भयंकर
गम्भीर गीत स्वन-तरंगें
ध्वनियों के आवर्त मँडराते पथ पर ।
बैण्ड के लोगों के चेहरे
मिलते हैं मेरे देखे हुओं से,
लगता है उनमें कई प्रतिष्ठित पत्रकार
इसी नगर के !!
बड़े-बड़े नाम अरे, कैसे शामिल हो गये इस बैण्ड-दल में !!
उनके पीछे चल रहा
संगीन-नोकों का चमकता जंगल,
चल रही पदचाप, तालबद्ध दीर्घ पाँत
टैंक-दल, मोर्टार आर्टिलरी सन्नद्ध
धीरे-धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना,
सैनिकों के पथराये चेहरे
चिढ़े हुए, झुलसे हुए, बिगड़े हुए गहरे ।
शायद मैंने उन्हें पहले कहीं भी देखा था ।
शायद, उनमें मेरे कई परिचित !!
उनके पीछे यह क्या !!

कैवलरी !!
काले-काले घोड़ों पर खाकी मिलिट्री ड्रेस,
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी -गेरुआ
आधा भाग कोलतारी भैरव,
भयानक !!
हाथों में चमकती सीधी खड़ी तलवार
आबदार !!
कन्धे से कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा ।
कमर में, चमड़े के कवर में पिस्तौल,
रोषभरी एकाग्र दृष्टि में धार है,
कर्नल, ब्रिगेडियर जनरल, मार्शल
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष
चेहरे वे मेरे जाने-बूझे-से लगते,
उनके चित्र समाचार-पत्रों में छपे थे
उनके लेख देखे थे,
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थीं
भई वाह !
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान्
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद
बनता है बलबन
हाय ! हाय !!
यहाँ ये दीखते हैं भूत-पिशाच -काय ।
भीतर का राक्षसी-स्वार्थ अब
साफ उभर आया है,
छुपे हुए उद्देश्य
यहाँ निखर आये हैं,
यह शोभा-यात्रा है किसी मृत्यु-दल की ।

(विचार की फिरकी
सिर में है घूमती ।)

इतने में प्रोसेशन में से कुछ मेरी ओर
आँखें उठीं रोषभर
हृदय में मानो कि संगीन नोकें ही घुस पड़ी बर्बर
सड़क पर उठ खड़ा हो गया कोई शोर -
'मारो गोली' दागो स्साले को एकदम
दुनिया की नजरों से हटाकर
छुपे तरीके से
हम जा रहे थे कि
आधी रात अंधेरे में उसने
देख लिया हमको
व जान गया वह सब
मार डालो, उसको खतम करो एकदम ।'

रास्ते पर भाग-दौड़ धमा-पेल !!
गैलरी से भागा मैं पसीने से सराबोर !!

एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-छिन्न
हो गये सब चित्र !

जागते में फिर से याद आने लगा वह स्वप्न,
फिर से याद आने लगे अँधेरे में चेहरे
और तब मुझे प्रतीत हुआ भयानक
गहन मृतात्माएँ इसी नगर की
हर रात जुलूस में चलती,
परंतु, दिन में
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र

विभिन्न दफ्तरों-कार्यालयों, केंद्रों में, घरों में ।
हाय ! हाय ! मैंने उन्हें देख लिया नंगा,
इसकी मुझे और सजा मिलेगी ।

4.

अकस्मात्
चार का गजर कहीं खड़का,
मेरा दिल धड़का,
उदास मटमैला मन रूपी वाल्मीक
विचलित ।
अगिनत काली-काली हायफन-डैशों की लकीरों की हलचल
सब ओर बिखराव ।
मैं अपने कमरे में यहाँ लेटा हुआ हूँ ।
काले-काले शहतीर छत के
हृदय दबोचते ।
यद्यपि आँगन में नल जोर मारता,
खूब खखारती पानी की धारा ।
किन्तु न शरीर में बल है
अँधेरे में गल रहा दिल यह ।

एकाएक मुझे भान होता है जग का,
अखबारी दुनिया का फैलाव,
फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर
पत्ते न खड़कें
सेना ने घेर ली हैं सड़कें ।
बुद्धि की मेरी रग
गिनती है समय की धकधक ।
यह सब क्या है ?

किसी जन-क्रांति के दमन-निमित्त यह
मार्शल लॉ है !!

दम छोड़ रहे भाग गलियों में मेरे पैर
साँस लगी हुई है,
जमाने की जीभ निकल पड़ी है,
कोई मेरा पीछा कर रहा है लगातार
भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़
चौराहा दूर से ही दीखता,
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार
नहीं होगा फिलहाल ।
दीखता है सामने ही अंधकार-स्तूप-सा
भयंकर बरगद -
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,
गरीबों का वही घर, वही छत,
उसके ही तल-खोह-अँधेरे में सो रहे
गृहहीन कई गये
डालों में लटके जो मटमैले चिथड़े
किसी एक अति दीन
पागल के धन वे ।
हाँ, वहाँ रहता है सिरफिरा कोई एक ।

किन्तु , आज इस रात बात अजीब है !
वही जो सिरफिरा पागल कतई था
आज एकाएक वह
जागरित -बुद्धि है प्रज्वलित-धी है ।
छोड़ सिरफिरापन,
बहुत ऊँचे गले से,

गा रहा कोई पद, कोई गान
आत्मोद्‌बोधमय !!

खूब भई, खूब भई
जानता क्या वह भी कि
सैनिक प्रशासन है नगर में वाकई !
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी !!

(करुण रसाल वे हृदय के स्वर हैं
गद्यानुवाद यहाँ उनका दिया जा रहा)

'....ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया ?
जीवन क्या जिया !!
उदम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में कनात से तन गये,
किसी व्यभिचार के बन गये बिस्तार

दु:खों के दागों को तमगों-सा पहना,
अपने ही खयालों में दिन-रात रहना,
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,
जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर

अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया !!

बताओ तो किस-किस के लिए तुम दौड़ गये,
करुणा के दृश्यों से हाय ! मुँह मोड़ गये,

बन गये पत्थर ;
बहुत-बहुत ज्यादा लिया,

दिया बहुत-बहुत कम ;
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम !!

लोकहित -पिता को घर से निकाल दिया,
जन-मन करुणा-सी माँ को हकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया
भावना के कर्त्तव्य ... त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य ... मार डाले !
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फँस गये,
अपने ही कीचड़ में धँस गये !!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये ।
अब तक क्या किया,
जीवन क्या जिया
ज्यादा लिया, और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम !!

मेरा सिर गरम है,
इसलिए भरम है ।
सपनों में चलता है आलोचन,
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन ।
निजत्व-भाप है बेचैन,
क्या करूँ किससे कहूँ
कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन ?

वैदिक ऋषि षुन:शेप के
शापभ्रष्ट पिता अजीगर्त समान ही
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ,
वही उसे अकस्मात् मिलता था रास्ते में ।
पागल था दिन में
सिरफिरा विक्षिप्त मस्तिष्क ।

हाय ! हाय !
उसने भी यह क्या गा दिया,
यह उसने क्या नया ला दिया,
प्रत्यक्ष,
मैं खड़ा हो गया खुद ही के सामने
निज की ही घन छाया-मूर्ति-सा गहरा
होने लगी बहस और
लगने लगे परस्पर तमाचे ।
छि: पागलपन है,

गलियों में अन्धकार भयावह ...
मानो मेरे कारण ही गल गया
मार्शला लॉ वह,
मानो मेरी निष्क्रय संज्ञा ने संकट बुलाया,
मानो मेरे कारण ही दुर्घट
हुई यह घटना ।

चक्र से चक्र लगा हुआ है ...
जितना ही तीव्र है द्वंद्व क्रियाओं घटनाओं का
बाहरी दुनिया में,
उतना ही तेजी से भीतरी दुनिया में
चलता है द्वंद्व कि

फिक्र से फिक्र लगी हुई है ।
आज उस पागल ने मेरी चैन भुला दी,
मेरी नींद गँवा दी ।

मैं इस बरगद के पास खड़ा हूँ ।

मेरा यह चेहरा
धुलता है जाने किस अथाह गम्भीर साँवले जल से,
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरों के
तिमिर अतल से
धुलता है मन यह ।
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित
कोई गुरु गम्भीर महान् अस्तित्व
महकता खँडहर-प्रसारों में उद्यान
गुलाबी-चमेली के, रात्रि-तिमिर में,
महकते हों, महकते ही रहते हों हर पल ।
किन्तु वे उद्यान कहाँ हैं,
अँधेरे में पता नहीं चलता ।
मात्र सुगन्ध है सब ओर
पर, उस महक -लहर में
कोई छुपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता
छटपटा रही है, छटपटा रही है ।

5.

एकाएक मुझे भान !!
पीछे से किसी अजनबी ने
कन्धे पर रक्खा हाथ ।
चौंकता मैं भयनाक

एकाएक थरथर रेंग गयी सिर तक,
नहीं, नहीं ! ऊपर से गिरकर
कन्धे पर बैठ गया, बरगद-पात एक
क्या वह संकेत, क्या वह इशारा ?
क्या वह चिट्ठी है किसी की ?
बरगद-आत्मा का पत्र है वह क्या ?
कौन-सा इंगित ?

भागता मैं दम छोड़
घूम गया कई मोड़
बन्दूक धाँय-धाँय
मकानों के ऊपर प्रकाश-सा छा रहा गेरुआ ।
भागता मैं दम छोड़
घूम गया कई मोड़ ।
घूम गयी पृथ्वी, घूम गया आकाश,
और फिर किसी एक मुँदे हुए घर की
पत्थर-सीढ़ी दिख गयी, उस पर
चुपचाप बैठ गया सिर पकड़कर !!
दिमाग में चक्कर
चक्कर... भँवरें
भँवरों के गोल-गोल केन्द्र में दीखा
स्वप्न सरीखा -
भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे
अँधियारी, एकान्त
प्रकृत गुहा एक ।
विस्तृत खोह के साँवले तल में
तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर
तेजस्क्रिय रेडियो-एक्टिव रत्न भी बिखरे,
झरता जिन पर प्रबल प्रताप एक ।

प्राकृत जल यह आवेगभरा है,
द्युतिमत् मणियों की अग्नियों पर से
फिसल-फिसलकर बहती हैं लहरें,
लहरों के तल में से फूटती हैं किरनें,
रत्नों की रंगीन रूपों की आभा
फूट निकलती
खोह की बेडौल भीतें हैं झिलमिल !!

पाता हूँ निज को खोह के भीतर
विलुब्ध नेत्रों से देखता हूँ द्युतियाँ,
गणित तेजस्क्रिय हाथों में लेकर
विभोर आँखों से देखता हूँ उनको...
पाता हूँ अकस्मात्
दीप्ति में वलयित रत्न वे नहीं हैं
अनुभव, वेदना, विवेक-निष्कर्ष,
मेरे ही अपने यहाँ पड़े हुए हैं
विचारों की रक्तिम अग्नि के मणि वे
प्राण-जल-प्रताप में घुलते हैं प्रतिपल
अकेले में किरणों की भीगी है हलचल
गीली है झिलमिल !!

हाय ! हाय ! मैंने उन्हें गुहा-वास दे दिया
लोक-हित क्षेत्र से कर दिया वंचित
जनोपयोग से वर्जित किया, और निषिद्ध कर दिया
खोह में डाल दिया !!
वे खतरनाक थे,
(बच्चे भीख माँगते) खैर ...
यह न समय है,
जूझना ही तय है ।

6.

सीन बदलता है,
सुनसान चौराहा साँवला फैला,
बीच में वीरान गेरुआघंटाघर
ऊपर कत्थई बुजुर्ग गुम्बद,
साँवली हवाओं में काल टहलता है ।
रात में पीले हैं चार घड़ी -चेहरे,
मिनिट के काँटों की चार अलग गतियाँ
चार अलग कोण,
कि चार अलग संकेत;
(मानस में गतिमान चार अलग गतियाँ)
खम्भों पर बिजली की गर्दनें लटकी,
शर्म से जलते हुए बल्बों के आस-पास
बेचैन खयालों के पंखों के कीड़े
उड़ते हैं गोल-गोल
मचल-मचलकर ।
घण्टाघर तले ही
पंखों के टुकड़े बीट व तिनके !
गुम्बद-विविर में बैठे हुए बूढ़े
असम्भव पक्षी
बहुत तेज नजरों से देखते हैं सब ओर
मानो कि इरादे,
भयानक चमकते ।
सुनसान चौराहा,
बिखरी हैं गतियाँ, बिखरी हैं रफ्तार,
गश्त में घूमती है कोई दुष्ट इच्छा ।

भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झोंक में
अँधेरे में सुलगाता सिगरेट अचानक
ताँबे-से-चेहरे की ऐंठ झलक रही ।
पथरीली सलवट
दियासलाई की पल-भर लौ में
भयानक दीखती ।
पर उसके चेहरे का रंग बदलता है हर बार
मानो अनपेक्षित कहीं न कुछ हो...
जाने क्या हो जाय, जाने क्या हो जाय !!
वह ताक रहा ...
संगीन-नोकों पर टिका हुआ
साँवला बन्दूक -जत्था
गोल त्रिकोण एक बनाये खड़ा जो
चौक के बीच में !!
एक ओर
टैंकों का दस्ता भी खड़े-खड़े ऊँघता,
परंतु अड़ा है !!

भागता, मैं दम छोड़
घूम गया कई मोड़ ।
भागती है चप्पल, चटपट आवाज
चाँटों-सी पड़ती ।
पैरों के नीचे का कीच उछलकर
चेहरे पर छाती पर पड़ता है सहसा,
ग्लानि की मतली ।
गलियों का गोल-गोल खोह-अँधेरा
चेहरे पर आँखों पर करता है हमला ।
अजीब उमस-बास
गलियों का रुँधा हुआ उच्छ्वास ।

भागता हूँ दम छोड़,
घूम गया कई मोड़ ।
धुँधले-से- आकार कहीं-कहीं दीखते,
भय का या घर के ? कह नहीं सकता
आता हूँ अकस्मात् कोलतार रास्ता
लम्बा व चौड़ा व स्याह ठण्डा,
बेचैन आँखें ये देखती हैं सब ओर ।
कहीं कोई नहीं है,
नहीं कहीं कोई भी ।
श्याम,आकाश में, संकेत -भाषा -सी तारों की आँखें
चमचमा रही हैं ।
मेरा दिल ढिबरी-सा टिमटिमा रहा है ।
कोई मुझे खींचता है रास्ते के बीच ही ।
जादू से बँधा हुआ चल पड़ा उस ओर ।
सपाट सूने में ऊँची-सी खड़ी जो
तिलक की पाषाण-मूर्ति है नि:संग
स्तब्ध जड़ीभूत ...
देखता हूँ उसको परन्तु, ज्यों ही मैं पास पहुँचता
पाषाण -पीठिका हिलती-सी लगती
अरे अरे, यह क्या !!
कण-कण काँप रहे जिनमें से झरते
नीले इलेक्ट्रॉन
सब ओर गिर रही चिंगगियाँ नीली
मूर्ति के तन से झरते हैं अंगार ।
मुसकान पत्थरी होठों पर काँपी,
आँखों में बिजली के फूल सुलगते ।
इतने में यह क्या !!
भव्य लालट की नासिका में से
बह रहा खून न जाने कब से

लाल-लाल गरमीला रक्त टपकता
(खून के धब्बों से भरा अँगरखा)
मानो कि अतिशय चिन्ता के कारण
मस्तक-कोष ही फूट पड़े सहसा
मस्तक-रक्त ही बह उठा नासिका में से ।
हाय,हाय पित: पित: ओ,
चिन्ता में इतने न उलझो
हम अभी जिन्दा हैं जिन्दा,
चिंता क्या है !!
मैं उस पाषाण-मूर्ति के ठण्डे
पैरों को छाती से बरबस चिपका
रुआँसा-सा होता
देह में तन गये करुणा के काँटे
छाती पर सिर पर बाँहों पर मेरे
गिरती हैं नीली
बिजली की चिनगियाँ,
रक्त टपकता है हृदय में मेरे
आत्मा में बहता -सा लगता
खून का तालाब ।
इतने में छाती के भीतर ठक-ठक
सिर में है धड़-धड़ !! कट रही हड्डी !!
फिक्र जबरदस्त !!
विवेक चलाता तीखा-सा रन्दा
चल रहा बसूला
छीले जा रहा मेरा यह निजत्व ही कोई
भयानक जिद कोई जाग उठी मेरे भी अन्दर
कोई बड़ा भारी हठ उठ खड़ा हुआ है ।

इतने में आसमान काँपा व धाँय-धाँय

बन्दूक-धड़ाम
बिजली की रफ्तार पैरों में घूम गया ।
खोहों-सी गलियों के अँधेरे में एक ओर
मैं थक बैठ गया,
सोचने-विचारने ।
अँधेरे में डूबे हुए मकानों के छप्परों पार से
रोने की पतली-सी आवाज
सूने में काँप रही, काँप रही दूर तक
कराहों की लहरों में पाशव प्राकृत
वेदना भयानक थरथरा रही है ।

मैं उसे सुनने का करता हूँ यत्न
कि देखता क्या हूँ-
सामने मेरे
सर्दी में बोरे को ओढ़कर
कोई एक, अपने
हाथ-पैर समेटे,
काँप रहा, हिल रहा !! मर जायगा !!
इतने में यह सिर खोलता है सहसा
बाल बिखरे,
दीखते हैं कान कि
फिर मुँह खोलता है, वह कुछ
बुदबुदा रहा है,
किन्तु, मैं सुनता ही नहीं हूँ ।
ध्यान से देखता-हूँ-वह कोई परिचित,
जिसे खूब देखा था, निरखा था कई बार
पर पाया नहीं था ।
अरे हाँ, वह तो ...
विचार उठते ही दब गये

सोचने का साहस सब चला गया है ।
वह मुख-अरे, वह मुख, वे गांधी जी !!
इस तरह पंगु !!
आश्चर्य !!
नहीं, नहीं, वे जाँच -पड़ताल
सुराग-सी-सी कुछ
करते हैं चुपचाप ।
रूप बदलकर ।

अँधेरे की स्याही में डूबे हुए देव को सम्मुख पाकर
मैं अति दीन हो जाता हूँ पास कि
बिजली का झटका
कहता है -'भाग जा, हट जा
हम हैं गुजर गये जमाने के चेहरे
आगे बढ़ जा ।'
किन्तु, मैं देखा किया उस मुख को ।
गम्भीर दृढ़ता की सलवटें वैसी ही,
शब्दों में गरुता ।
वे कह रहे हैं -
'दुनिया न कचरे का ढेर कि जिस पर
दानों को चुगने चढ़ा हुआ कोई भी कुक्कुट
कोई भी मुर्गा
यदि बाँग दे उठे जोरदार
बन जाये मसीहा'
वे कह रहे हैं -
'चिट्ठी के लौंदे में किणीले कण-कण
गुण हैं,
जनता के गुणों से ही सम्भव
भावी का उद्भव'

गम्भीर शब्द वे और आगे बढ़ गये,
जाने क्या कह गये !!
मैं अति उद्विग्न !
एकाएक उठ पड़ा आत्मा का पिंजर
मूर्ति की ठठरी ।
नाक पर चश्मा, हाथ में डण्डा,
कन्धे पर बोरा, बाँह में बच्चा ।
आश्चर्य !! अद्‌भुत ! यह शिशु कैसे !!
मुसकरा उस द्युति-पुरुष ने कहा तब-
'मेरे पास चुपचाप सोया हुआ यह था ।
संभालना इसको, सुरक्षित रखना'

मैं कुछ कहने को होता हूँ, इतने में वहाँ पर
कहीं कोई नहीं है, कहीं कोई नहीं है ।
और ज्यादा गहरा व और ज्यादा अकेला
अँधेरे का फैलाव !
बालक लिपटा है मेरे इस गले से चुपचाप,
छाती से कन्धे से चिपका है नन्हा-सा आकाश
स्पर्श है सुकुमार प्यरभरा कोमल,
किन्तु, है भार का गम्भीर अनुभव ।
आकाशी तारों को साथ लिये हुए मैं
चला जा रहा हूँ
घुसता ही जाता हूँ फासलों की खोहों की तहों में ।

सहसा रो उठा कन्धे पर वह शिशु
अरे अरे वह स्वर अतिशय परिचित !!
पहले भी कई बार कहीं तो भी सुना था ।
उसमें तो स्फोटक क्षोभ का आवेग,
गहरी है शिकायत,

क्रोध भयंकर ।
मुझे डर यदि कोई वह स्वर सुन ले ।
हम दोनों फिर कहीं नहीं रह सकेंगे ।
मैं पुचकारता हूँ, बहुत दुलारता ;
समझाने के लिए तब गाता हूँ गाने,
अधभूली लोरी ही होंठों से फूटती !
मैं चुप करने की जितनी भी करता हूँ कोशिश
और -और चीखता है क्रोध से लगातार !!
गीले-गीले अंगार टपकते हैं मुझ पर ।

किन्तु, न जाने क्यों बहुत प्रसन्न हूँ ।
(जिसको न मैं इस जीवन में कर पाया,
वह कर रहा है)
मैं शिशु-पीठ को थपथपा रहा हूँ,
आत्मा है गीली ।
पैर आगे बढ़ रहे, मन आगे जा रहा ।

डूबता हूँ मैं किसी भीतरी सोच में...
हृदय की थाह में रक्त का तालाब,
रक्त में डूबी रही लाल-लाल किरणें,
अनुभव रक्त में डुबे हैं संकल्प,
चलते हैं साथ-साथ ।
अँधियारी गलियों में चलता जा रहा हूँ ।

इतने में पाता हूँ अँधेरे में सहसा
कन्धे पर कुछ नहीं !! वह शिशु
चला गया जाने कहाँ
और अब उसके ही स्थान पर
मात्र है सूरजमुखी फूल-गुच्छे ।

उन स्वर्ण-पुष्पों से प्रकाश -विकीरण
कन्धे पर, सिर पर, गालों पर, तन पर,
रास्ते पर फैले हैं किरणों के कण-कण ।
भई वाह, यह खूब !!
इतने में गली एक आ गयी और मैं
दरवाजा खुला हुआ देखता ।
जीना है अँधेरा ।
कहीं कोई ढिबरी-सी टिमटिमा रही है ।
मैं बढ़ रहा हूँ
कन्धों पर फूलों के लटकते वे गच्छे
क्या हुए, कहाँ गये ?
कन्धे क्यों वजन से दुख रहे सहसा ।
ओ हो !!
बन्दूक आ गयी
बाह वा !!
वजनदार रायफल,
भई खूब !!

खुला-खुला कमरा है साँवली हवा है,
झाँकते हैं खिड़की से, अँधेरे में टँके हुए सितारे
फैली है बर्फीली साँस-सी , वीरान
तितर-बितर सब फैला है सामान ।
बीच में ही कोई जमीन पर पसरा,
फैलाये बाँहें, ढह पड़ा आखिर ।
मैं देह के चेहरे पर फैलाता टॉर्च कि यह क्या -
खूनभरे बाल में गोली का सूराख,
खून का परदा-सा गालों पर फैला,
होठों पर सूखी है कत्थई धारा,
फूटा है चश्मा, नाक है सीधी,

ओफ्फो ! एकान्त -प्रिय यह मेरा
परिचित व्यक्ति है, वही, हाँ,
सचाई थी सिर्फ एक अहसास
वह कलाकार था
गलियों के अंअँधेरे का हृदय में भार था
पर कार्य क्षमता से वंचित व्यक्तित्व
चलाता था अपना असंग अस्तित्व ।
सुकुमार मानवीय हृदयों के अपने
शुचित्तर विश्व के मात्र थे सपने ।
स्वप्न व ज्ञान व जीवनानुभव जो
हलचल करता था रह-रह दिल में,
किसी को भी दे नहीं पाया था वह तो ।
शून्य के जल में डूब गया नीरव
हो नहीं पाया उपयोग उसका ।
किन्तु न जाने किस शोक में क्या कर गुजरा कि
सन्देहास्पद समझा गया और
मारा गया वह बधिकों के हाथों ।
मुक्ति का इच्छुक तृषार्त्त अन्तर
मुक्ति के यत्नों के साथ निरन्तर
सबका था प्यारा,
अपने में द्युतिमान ।
उसका यों वध हुआ,
मर गया एक युग,
मर गया एक जीवनादर्श !!
इतने में मुझको ही चिढ़ाता है कोई ।
सवाल है - मैं क्या करता था अब तक
भागता फिरता था सब ओर ।
(फिजूल है इस वक्त कोसना खुद को)
एकदम जरूरी -दोस्तों को खोजूँ

पाऊँ मैं नये-नये सहचर
सकर्मक-सत्-चित् वेदना -भास्वर !!

जीने से उतरा,
एकदम विद्रूप रूपों से घिर गया सहसा
पकड़ मशीन -सी,
भयानक आकर घेरते हैं मुझको,
मैं आततायी सत्ता के सम्मुख

एकाएक हृदय धड़ककर रुक गया, क्या हुआ !!
भयानक सनसनी ।
पकड़कर कॉलर गला दबाया गया ।
चाँटों से कनपटी टूटी कि यह क्या
त्वचा उखड़ गयी गाल की पूरी ।
कान में भर गयी
भयानक अनहद-नाद की भन-भन ।
आँखों में तैरी
रक्तिम तितलियाँ, चिनगियाँ नीली ।
सामने उगते-डूबते धुँधले
कुहरित बर्तुल,
जिनका कि चक्रिल केंद्र ही फैलाता जाता
उस फैलाव में दीखते मुझको
धँस रहे, गिर रहे बड़े-बड़े टॉवर
घुँघराला धूआँ गेरुई ज्वाला ।
हृदय में भगदड़ -
सम्मुख दीखा
उजाड़ बंजर टीले पर सहसा
रो उठा कोई, रो रहा कोई
भागता कोई सहायता देने ।

(अन्तर्त्तत्वों का पुनर्प्रबन्ध और पुनर्व्यवस्था
पुनर्गठन-सा होता जा रहा)

दृश्य ही बदला, चित्र बदल गया
जबरन ले जाया गया मैं गहरे
अँधियारे कमरे के स्याह सिफर में ।
टूटे-से स्टूल पर बिठाया गया हूँ ।
शीश की हड्डी जा रही तोड़ी ।
लोहे की कील पर बड़े हथौड़े
पड़ रहे लगातार ।
शीश का मोटा अस्थि-कवच ही निकाल डाला ।
देखा जा रहा -
मस्तक-यंत्र में कौन-से विचारों की कौन-सी ऊर्जा
कौन-सी रग में कौन-सी फुरफुरी,
कहाँ है पश्चत् -कैमरा जिसमें
तथ्यों के जीवन -दृश्य उतरते,
कहाँ-कहाँ क्षोभक-स्फोटक सामान ।
भीतर कहीं पर गड़े हुए गहरे
तलघर अन्दर
छुपे हुए छापाखाने को खोजो ।
जहाँ कि चुपचाप खयालों के पर्चे
छपते रहते हैं (बाँटे जाते)
इस संख्य के मंत्री को खोजो
शायद उसका ही नाम हो आस्था,
कहाँ है सरगना इस टुकड़ी का
कहाँ है आत्मा ?
(और मैं सुनता हूँ चिढ़ी हुई ऊँची
खिझलायी आवाज)
स्क्रीनिंग करो.... मिस्टर गुप्ता,
क्रास एकजामिन हिम थोरोली !!

चाबुक -चमकार
पीठ पर यद्यपि
उखड़े चर्म की कत्थई -रक्तिम रेखाएँ उभरीं
पर यह आत्मा कुशल बहुत है,
देह में रेंग रही संवेदना के
झनझन तारों को जबरन
समेटकर सब वह
वेदना-विस्तार करके इकट्ठा
मेरा मन यह, जोर लगाकर
बलात उनकी छोटी-सी हड्‌डी
गठान बाँधता सख्त व मजबूत
मानो कि पत्थर ।
जोर लगाकर
उसी गठान को हथेलियों से
करता है चूर-चूर
धूल में बिखरा देता है उसको ।
मन यह हटता है देह की हद से
जाता है कहीं पर अलग जगत् में ।
विचित्र क्षण है,
सिर्फ हूँ जादू
मात्र मैं बिजली
यद्यपि खोह में खूँटे से बँधा हूँ
दैत्य हैं आस-पास
किन्तु हूँ चुपचाप पत्र के रूप में
किसी एक जेब में
वह जेब ...
किसी एक फटे हुए मन की ।

समस्वर समताल,
सहानुभूति की सनसनी कोमल !!

हम कहाँ नहीं हैं,
सभी जगह मन ।
निजता हमारी ।
भीतर-भीतर बिजली के जीवित
तारों के जाले,
ज्वलन्त तारों की भीषण गुत्थी,
बाहर-बाहर धूल-सी भूरी
जमीन की पपड़ी ।
अग्नि को लेकर मस्तक अस्थिर
उग्र प्रभंजन लेकर उर यह
बिलकुल निश्चल ।
भीषण शक्ति को धारण करके
आत्मा की पोशाक दीन व मैली ।
विचित्र रूपों को धारण करके
चलता है जीवन, लक्ष्यों के पथ पर ।
रिहा !!
छोड़ दिया गया !!
अब छाया -मुख कई करते हैं पीछा
श्यामाकार न छोड़ते हैं मुझको,
जहाँ गया, जहाँ रुककर, जहाँ चला,, वहाँ पर
भौंहों के नीचे रहस्यमय छेद
मारते हैं संगीन -
दृष्टि की पत्थरी चमक है पैनी ।

मुझे अब खोजने होंगे साथी-
काले गुलाब व स्याह सेवती,
श्याम चमेली,
सँवलाये कमल जो खोहों के जल में,
भूमि के भीतर पाताल तल में

खिले हुए कब से भेजते हैं संकेत
सुझाव-संदेश भेजते रहते !!
इतने में सहसा दूर क्षितिज पर
दीखते हैं मुझको
बिजली की नंगी लताओं से झर रहे
सफेद नीले मोतिया चम्पई फूल गुलाबी,
उठते हैं वहीं पर हाथ अकस्मात्
अग्नि के फूलों को समेटने लगते ।
मैं उन्हें देखने लगता हूँ एकटक ;
अचानक विचित्र स्फूर्ति से मैं भी
जमीन पर पड़े चमकीले पत्थर
लगातार चुनकर
बिजली के फूल बनाने की कोशिश
करता हूँ । रश्मि विकीरण-
मेरे भी प्रस्तर करते हैं प्रतिक्षण ।
तेजस्क्रिय मणि-रत्न हैं ये भी ।
बिजली के फूलों की भाँति ही
रत्न हैं वे भी,
किन्तु असन्तोष मुझको है गहरा,
शब्दाभिव्यक्ति -अभाव का संकेत ।
काव्य-चमत्कार उतना ही रंगीन
परन्तु ठंडा ।
मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय पर
अतिशय शीतल ।
मुझको तो बेचैन बिजली की नीली
ज्वलन्त बाँहों में बाँहों को उलझा
करनी है उतनी ही प्रदीप्त लीला
आकाश-भर में साथ-साथ उसके घूमना है मुझको
मेरे पास न रहा है बिजली का गौर कि

भीगकर हूँ मेघ में काला
परन्तु, मुझमें है गम्भीर आवेश
अथाह प्रेरणास्त्रोत का संयम ।
अरे इन रंगीन पत्थर-फूलों से मेरा
काम नहीं चलेगा !!
क्या कहूँ
मस्तक-कुंड में जलती
सत्-चित्-वेदना -सच्चाई व गलती -
मस्तक -शिराओं में तनाव दिन-रात ।

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे ।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब ।
पहुँचाना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार
तब कहीं देखने मिलेगी हमको
नीली झील की लहरीली थाहें
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक,
धँसना ही होगा
झील के हिम-शीत सुनील जल में ।
जादुई झील को करनी ही होगी मेरी प्रतीक्षा ।

7.

चाँद उग आया है
गलियों की आकाशी लम्बी -सी चीर में
तिरछी है किरणों की मार
उस नीम पर
जिसके कि नीचे
मिट्टी के गोल चबूतरे पर नीली

चाँदनी में कोई दिया सुनहला
जलता है मानो कि स्वप्न हो साक्षात् ।
मकानों के बड़े-बड़े खँडहर जिनके कि सूने
मटियाले भागों में खिलती ही रहती
महकती रातरानी फूलभरी जवानी में लज्जित
तारों की टकटकी अच्छी न लगती ।
भागता मैं दम छोड़,
घूम गया कई मोड़
टूटी हुई भीतों के उस पार कहीं पर
बेस गरम है
दिमाग में जान है, दिलों में दम है
सत्य से सत्ता के युद्ध का रंग है,
पर कमजोरियाँ सब मेरे संग हैं ;
पाता हूँ सहसा -
अँधेरे की सुरंग -गलियों में चुपचाप
चलते हैं लोग-बाग
दृढ़-पद गम्भीर,
बालक, युवागण
मन्द-गति नीरव
किसी निज भीतरी बात में व्यस्त हैं,
कोई आग जल रही कहीं तो भी अंत्स्थ ।
विचित्र अनुभव !!
जितना मैं लोगों की पाँतों को पाकर
बढ़ता हूँ आगे,
उतना ही पीछे मैं रहता हूँ अकेला,
पश्चात -पद हूँ ।
पर एक रेला और
पीछे से चला और
अब मेरे साथ है !

आश्चर्य !! अद्‌भुत !!
लोगों की मुट्ठियाँ बँधी हैं ।
उँगली-संधि से फूट रही किरणें
लाल -लाल,
यह क्या !!
मेरे ही विक्षोभ-मणियों को लिये वे,
मेरे ही विवेक-रत्नों को लेकर
बढ़ रहे लोग अँधेरे में सोत्साह ।
किन्तु मैं अकेला
बौद्धिक जुगाली में अपने से दुकेला ।

गलियों के अँधेरे में मैं भाग रहा हूँ
इतने में चुपचाप कोई एक
दे जाता पर्चा,
कोई गुप्त शक्ति
हृदय में चुपचाप करती है चर्चा !!
मैं बहुत ध्यान से पढ़ता हूँ उसको ।
आश्चर्य !
उसमें तो मेरे गुप्त विचार व
दबी हुई संवेदनाएँ व अनुभव
पीड़ाएँ जगमगा रही हैं ।
यह सब क्या है !!

आसमान झाँकता है उन स्याह लकीरों के बीच-बीच
वाक्यों की पाँतों में आकाश -गंगा-सी फैली
शब्दों के व्यूहों में झिलमिल नक्षत्र
और उन तारक दलों में तो खिलता है आँगन
जिसमें कि चम्पा के फूल चमकते
और उन पुष्पों के अन्तस्तल में

प्राण-समस्या का कोई हल है ।
पर्चा पढ़ते हुए उड़ता हूँ हवा में,
चक्रवात-गतियों में घूमता हूँ नभ भर,
जमीन पर एक साथ
सर्वत्र सचेत उपस्थित
प्रत्येक स्थान पर लगा हूँ मैं काम में,
प्रत्येक चौराहे, दुराहे व राहों के मोड़ पर
सड़क पर खड़ा हूँ
मनाता हूँ, मानता हूँ, मानाता हूँ !!
और तब तत्काल दूरियाँ
अपने ही देश के नक्शे-सी टँगी हुई
रंगी हुई लगती !!
स्वप्नों की कोमल किरनों का पानी
घनीभूत संघनित द्युतिगान
शिलाओं में परिणत,
ये सब दृढ़ीभूत कर्म-शिलाएँ हैं
जिनसे कि स्वप्नों की मूर्ति बनेगी
सस्मित सुखकर
जिसमें से उद्गत क्रियाशील किरनें
ब्रह्माण्ड भर में नाचेंगी सब कुछ ।
सचमुच, मुझको तो जिन्दगी-सरहद
सूर्यों के प्रांगण पार भी जाती-सी दीखती !!
मैं परिणत हूँ
कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता ।
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातंत्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता युक्ति के मन को,
जन को ।

8.

एकदम हृदय धड़ककर रुक गया, क्या हुआ !!
नगर से भयानक धुआँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।
सड़कों पर मरा हुआ फैला है सुनसान,
हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेश ।
साथ-साथ घूमते हैं, साथ-साथ रहते हैं,
साथ-साथ सोते हैं, खाते हैं, पीते हैं
जन-मन उद्देश्य !!
पथरीले चेहरों की खाकी ये कसी ड्रेस
घूमते हैं यंत्रवत्
बेपहचाने-से लगते हैं वाकई
कहीं आग लग गयी कहीं गोली चल गयी ।

सब चुप साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक्
चिन्तक, शिल्पकार, 'नर्तक चुप हैं,
उनके खयाल से वह सब गप है
मात्र किंवदंती ।
रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल-बद्ध ये सब लोग
नपुंसक भोग-शिरा -जालों में उलझे,
प्रश्न की उथली-सी पहचान
राह से अनजान
वाक् रुदन्ती ।
चढ़ गया उन पर कहीं कोई निर्दयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

भव्याकार भवनों के विवरों में छिप गये
समाचार-पत्रों की पंक्तियों के मुख स्थूल ।
गढ़ी जाती समीक्षा,
गढ़ी जाती टिप्पणी, जन-मन-उर-शूल ।
बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारों का उद्‌भास ।
बड़े-बड़े चेहरों पर स्याहियाँ पुत गयीं ।
नपुंसक श्रद्धा
सड़क के नीचे की गटर में छिप गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

धुएँ के जहरीले मेघों के नीचे ही हर बार
द्रुत निज विश्लेष-गतियाँ,
एक सूक्ष्म पल में शत साक्षात्कार ।
टूटते हैं धोखों से भरे हुए सपने ।
रक्त में बहती हैं ज्ञान की किरनें
विश्व की मूर्ति की आत्मा ही ढल गयी,
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

राह के पत्थर-ढोकों के अन्दर
पहाड़ के झरने
तड़पने लग गये ।
मिट्टी के लोंदे के भीतर
भक्ति की अग्नि का उद्रेक
भड़कने लग गया ।
धूल के कण में
अनहद नाद का कंपन
खतरनाक !!
मकानों की छत से

गाडर कूद पड़े
धम से !
घूम उठे खम्भे
भयानक वेग से चल पड़े हवा में ।
दादा का सोंटा भी करता है दाँव-पेंच,
गगन में नाच रही कक्का की लाठी ।
तेजी से लहराती घूमती
मुन्ने की सलेट-पट्टी ।
एक-एक वस्तु या एक - एक प्राणाग्नि-बम है,
ये परमास्त्र हैं, प्रक्षेपास्त्र हैं, यम हैं ।
शून्याकाश में से होते हुए वे
अरे, अरि पर ही टूट पड़े अनिवार ।
यह कथा नहीं है, यह सब सच है, हाँ भई !!
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

किसी एक बलवान तम-श्याम लुहार ने बनाया
कण्डों का वर्तुल ज्वलंत मण्डल ।
स्वर्णिम कमलों की पाँखुड़ी - जैसी ही
ज्वालाएँ उठती हैं उससे,
और उसे गोल-गोल ज्वलंत में रक्खा
लोहे का चक्का
चिनगियाँ स्वर्णिम नीली व लाल-लाल
फूलों -सी खिलती ।
कुछ बलवान जन साँवले मुख के
चढ़ा रहे लकड़ी के चक्के पर जबरन
लाल-लाल लोहे की गोल-गोल पट्टी
घन मार घन मार
उसी प्रकार अब
आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जा रहा

संकल्प-शक्ति के लोहे का मजबूत
ज्वलन्त टावर !!
अब युग बदला है वाकई
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।

गेरुआ मौसम, उड़ते हैं अंगार
जंगल जल रहे, जिन्दगी के अब
जिनके कि ज्वलन्त प्रकाशित भीषण
कूलों से बहती वेदना नदियाँ
जिनके कि जल में
सचेत होकर सैकड़ों सदियाँ ज्वलन्त अपने
बिम्ब प्रसारित करती हैं प्रतिपल ।
वेदना -नदियाँ
जिनमें कि डूबे हैं, युगानुयुग से
पिताओं की चिन्ता का उद्विग्न रंग भी
विवेक-पीड़ा की गहराई बेचैन,
डूबा है जिसमें श्रमिक का सन्ताप ।
माँओं के आँसू ।
वह जल पीकर
मेरे युवकों में व्यक्तित्वाचार
विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह से करते हैं संचार
मानो कि ज्वाला-पंखुरी-दल में घिरे हुए वे सब
अग्नि-कमल के केंद्र में बैठे ।
द्रुत-वेग बहती है शक्तियाँ निश्चयी ।
कहीं आग लग गयी,
कहीं गोली चल गयी !!
*   *   *
एकाएक फिर स्वप्न -भंग
बिखर गये चित्र कि मैं फिर अकेला ।
मस्तिष्क-हृदय में गहरे व बारीक छेदों से भर गये ।

पर उन रंध्रों के दुखों में गहरा
प्रदीप्त ज्योति का रस बस गया है ।

मैं उन सपनों का खोजता हूँ आशय,
अर्थों की वेदना घिरती है मन में ।
अजीब झमेला ।
घूमता है मन उन भावों के घावों के आस-पास
आत्मा में चमकीली प्यास भर गयी है ।
जग भर दीखता है सुनहली तसवीरें मुझको
मानो कि कल रात किसी अनपेक्षित क्षण में ही सहसा
प्रेम कर लिया हो मनोहर मुख से
जीवन भर के लिए !!
मानो कि उस क्षण
अतिशय मृदु किन्हीं बाँहों ने आकर
कस लिया था मुझको
उस स्वप्न-स्पर्श की, चुम्बन-घटना की याद आ रही है,
याद आ रही है !!
अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी ?

कमरे में सुबह की धूप आ गयी है,
गैलरी में फैला है सुनहला रवि-छोर
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय ! यह वेदना स्नेह की गहरी
जाग गयी क्योंकर ?
सब ओर विद्युत तरंगीय हलचल
चुम्बकीय आकर्षण ।

प्रत्येक वस्तु का निज-निज आलोक,
मानो कि अलग-अलग फूलों के रंगीन
अलग-अलग वातावरण हैं बेमाप,

प्रत्येक अर्थ की छाया में दूसरा, आशय
झिलमिला रहा-सा
डेस्क पर रखे हुए महान् ग्रंथों के लेखक
मेरी इन मानसिक क्रियाओं के बन गये प्रेक्षक,
मेरे इस कमरे में आकाश उतरा
मन यह गगन की वायु में सिहरा ।
उठता हूँ जाता हूँ गैलरी में खड़ा हूँ ।
एकाएक यह व्यक्ति ...
सामने
गलियों में, सड़कों पर लोगों की भीड़ में
चला जा रहा है ।
वही जन जिसे मैंने देखा था गुहा में ।
धड़कता है दिल
कि पुकारने को खुलता है मुँह
कि अकस्मात् ...
वह दिखा, वह दिखा
वह फिर खो गया किसी जन-यूथ में...
उठी हुई बाँह यह उठी हुई रह गयी !!

अन-खोजी निज समृद्धि का वह परम उत्कर्ष
परम अभिव्यक्ति ...
मैं उसका शिष्य हूँ
वह मेरा गुरु है
गुरु है !!
वह मेरे पास कभी बैठा ही नहीं था,
वह मेरे पास कभी आया ही नहीं था,
तिलिस्मी खोह में देखा था एक बार
आखिरी बार ही !!

पर वह जगत् की गलियों में घूमता है प्रतिपल
वह फटे हाल रूप ।
विद्युल्लहरित वही गतिमयता,
उद्विग्न ज्ञान-तनाव वह
सकर्मक प्रेम की वह अतिशयता
वही फटे-हाल रूप !!

परम अभिव्यक्ति
अविरत घूमती है जग में
पता नहीं जाने कहाँ जाने कहाँ
वह है ।
इसीलिए मैं हर गली में
और हर सड़क पर
झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि,
प्रत्येक चरित्र,
व हर एक आत्मा का इतिहास,
हर एक देश व राजनीतिक स्थिति और परिवेश
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत, परिणति !!
खोजता हूँ पठार ... पहाड़... समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे
मेरी वह खोयी हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार
आत्म -सम्भवा ।

(सम्भावित रचनाकाल 1937 से 1962 तक । अन्तिम संशोधन 1962 में । नागपुर - राजनाँदगाँव । 'कल्पना', नवम्बर 1964, में 'आशंका के द्वीप' शीर्षक से प्रकाशित । बाद में 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित ।)

धूमिल : मोचीराम

3.2. धूमिल :

आजादी के बाद देश कुछ विशेष परिस्थितिवश अजीब दिशाओं में बढ़ा । जैसे सांप्रदायिक दंगे, विदेशी आक्रमण और आंतरिक क्षेत्र में नैतिक स्तर का हर क्षेत्र में ह्रास इनमें मुख्य हैं । आम आदमी सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ है । इस प्रकार साठवें दशक के दौरान कविता भावुकता रहित हो जाती है । वह आम आदमी से सीधे जुड़ती है । अगर उसका भाग्य बदलना है, क्रांति निहायत जरूरी है । उसका केवल अस्तित्व बचा है । उसकी जीवन चिंता, दु:ख, दरिद्रता और कष्टों से भरा है । मौलिक आवश्यकता पूरण में ही जीवन बीत जाता है । ऐसे आमजन के पक्षधर कवि हैं धूमिल । आम आदमी की लड़ाई वे अपनी कविता का हथियार बना कर इस्तेमाल करते हैं । आम आदमी का जीवन बेमानी है । कुछ धुयें में घिरे मकान में भूखे परिवार की परंपरा लेकर जी रहा है । जो हो, इसमें जीने की अदम्य आकांक्षा है । इसे पहचान कर धूमिल ने कविता रचना शुरू की । आर्थिक तत्व जीवन में राजनीति और अन्य परिस्थितियों को प्रभावित करता है । कवि अपने को सामाजशास्त्रीय संबंधों से जोड़ता है । जीवंत सामाजिक संघर्ष और जटिलता से गुजर कर कविता में तनाव और आत्मसंघर्ष का भाव भरता है । इसीमें धूमिल कविता एक नई समाज चेतना जमीन पर लाकर प्रस्तुत करते हैं ।

3.2.1 कवि परिचय :

'धूमिल' तो उनका उपनाम है । वास्तव में वे खेवली (वाराणसी) में जन्मे । पिता शिवनारायण पांडेय और माता रसवंती देवी मध्यवर्गी परिवार के सदस्य थे । मेट्रिक गाँव में ही पूरी की । परंतु कालेज की पढ़ाई आर्थिक स्थिति के कारण जारी नहीं रख सके । जब बारह वर्ष के थे, पिता का देहांत हो गया । अगले साल इनका विवाह कर दिया । पूरे परिवार का दायित्व आ गया । रोजी रोटी की तलाश में कलकत्ता आ गए । कुछ दिन बाध्य होकर लोहा ढोने का काम किया । पर बाद में लकड़ी के व्यापारी के यहाँ सलीके की नौकरी मिल गई । परंतु सुदामा वहाँ टिक न सके । वाराणसी आकर उन्होंने विद्युत में डिप्लोमा की पढ़ाई की परीक्षा दी । इसमें प्रथम श्रेणी में प्रथम आने के कारण नौकरी मिल गई । पांच साल विद्युत अनुदेशक पद पर रहे । 1962 में प्रमोशन पाकर पर्यवेक्षक बने और बलिया भेज दिया । 1968 में फिर वाराणसी ट्रांस्फर हो गया । लेकिन ईर्ष्यावश उन्हें सीतापुर भेजा । सिरदर्द उभरा तो वाराणसी के बीएचयू मेडिकल में भर्ती कराया । फिर लखनऊ मेडिकल कालेज ले गये । वहाँ ब्रेनट्यूमर का इलाज चला । परंतु 10 फर्वरी 1975 को देहांत हो गया ।

धूमिल को अपने जीवनकाल में 'संसद से सड़क तक' संकलन देखने का मौका मिला । देहांत के बाद 'कल सुनना मुझे' का प्रकाशन छोटे भाई कन्हैया पांडेय ने करवाया । केंद्र साहित्य अकादेमी पुरस्कार से इसे मरणोत्तर पुरस्कृत किया गया । धूमिल समाज सचेतन कवि थे । समाज की विसंगतियों से वे चिंतित थे । उन्हें लगता है कि कभी धर्म या सांप्रदायिकता, कभी आंचलिकता, कभी देश की सुरक्षा को मुद्दा बना कर वे लोग शोषण और दमनचक्र चालू रखते हैं । इसमें वे सामाजिक -- राजनीतिक विभीषिका का उद्घाटन करते चलते हैं ।

3.2.2. मोचीराम का कथानक :

यह हास्य -व्यंग्य के तीखे मेल में रची कविता है । कवि जूते गांठने वाले के सामने जाता है । सबके प्रति उसमें समान भाव है । यहाँ आदमी एक आदम नहीं रह जाता । वह खरीद-बिक्री की वस्तु में बदल गया है । संबंधों का तो दूर तक कहीं पता नहीं । वह सामान्य आदमी हो, बनिया हो या बिसायती,(फेरीवाला) सब तरह-तरह के जूते बन जाते हैं । पेशे के सामने उनका यही व्यक्तित्व रह जाता है । लेकिन कवि को लगता है जूते और पेशे के बीच एक आदमी अभी भी बचा है । पर उसकी विवशता यह है कि वह जिन्दा रहने के पीछे सही तर्क नहीं पाता है ।

जब प्रकृति में ललाई (सौन्दर्य) आती है, अपने पेशे में जुड़े रहना कविठ होता है । देह के पीछे आदमी का मन है जो पेशे के इस परिवर्तन से घायल होता है । धारणा यह है कि कविता और पेशा भिन्न हैं । मोची क्या कवि- संवेदना नहीं पा सकता ? यह कविता की यह आम जाति निर्विशेष सब को जलाती है । सचाई (यथार्थ) सबमें से गुजरता है । कुछ यथार्थ से परिचित हैं, पर अन्याय चुपचाप सह रहे हैं । पेट की आग(पेट के लिए रोजी-रोटी जाने के डर से चुप हैं) से डरते हैं । जबकि कुछ हैं जो न सह कर प्रतिवादी चीख से सबको बता देते हैं । इनकार कर प्रतिवाद कर चीख पड़ते हैं । कवि कहता है यह चुप्पी (सहते जाना) और चीख (प्रतिवादी स्वर उठाना) दोनों अपना-अपना फर्क पता कर रहे हैं । भविष्य के लिए दोनों एक ही अर्थ रखते हैं । दोनों का महत्व समान है । कवि चुपचाप सहने की मजबूरी समझ रहे हैं ।

3.2.3. कविता का भाव - मर्म और वैशिष्ट्य :

मोची के लिए मोचीराम कह कर धूमिल एक सामान्य जन के साथ संवेदना व्यक्त कर रहा है । प्रारंभ में उसके साथ संवाद में कवि उसमें भरी विवशता, अमानवीय स्थिति और मजबूरी आंकता है । यहाँ उनकी सपाट बयानी में कथन का भीतरीपन और बाहरीपन समाप्त हो कर एक भूमि पर उभर आता है । इस प्रकार सीधे कही कविता उत्तेजक और विडंबनापूर्ण बन जाती है ।

यहाँ धूमिल की कविता की भाषा में उत्तेजना नहीं है । पर सशक्त भाषा की कमी नहीं । आज की इस गलतफहमी से परिचित है कि भाषा पर किसी आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है । कवि आदमी का पक्षधर है । वह जाति-धर्म राजनीति से ऊपर हट कर आदमी वह जिसे आग जलाती है । कोई भेद नहीं करती । यहीं कवि मोची और शायर में अभेदता प्रदर्शित कर रहा है । यहाँ कहता है कि सब लोगों की तरह भाषा उसे काटती है, मौसम सताता है । वह इन सबसे परे नहीं है ।

कवि ने भाषा को आभिजात्य से हटा कर उसके 'सहज' और 'ग्राम धरातल पर' रखा है । पहला ही शब्द 'रांपी', चकत्ती, टेलीफून, नांघकर, हियाँ ठोक्को, नामा, टमकता, सुखतल्ले, कमजात, जैसे शब्दों का प्रयोग आमतौर पर कविता में प्रयोग किये जाते हैं । उनकी भाषा का स्रोत ग्राम जीवन है, इस जन प्रयुक्त भाषा से वे अपनी प्रतिबद्धता प्रकट कर ताजगी और अभिव्यक्ति के लिए अनछूये क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं । इससे परिवेश जन्य यथार्थ के लिए चित्रण करते हैं । यहाँ खड़ी बोली का स्वाभाविक शब्द प्रयोग कर काव्य भाषा को स्वाभाविक और परिचित रूप दिया है । 'मोचीराम' कविता में काव्यनायक एक मोची को करना और उसे 'मोचीराम' जैसा आदरणीय नाम देना धूमिल की विशेष दृष्टि का सूचक है । मानव के प्रति कवि की संवेदना की व्यापकता स्पष्ट है ।

सूक्ति परक भाषा इस कविता में कुछ स्थानों पर प्रयुक्त हुई है । जैसे -

i) ''मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है''

ii) ''चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कहीं न कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है''

iii) ''यार ! तू मोची नहीं शायर है''

iv) ''इनकार से भरी हुई एक चीख
और एक समझदार चुप
दोनों का मतलब एक है''

इस प्रकार 'सपाट बयानी' का आरोप अपना अस्तित्व खो देता है । कविता में सांकेतिकता के जरिये धूमिल पूरे परिवेश को अभिव्यक्ति देते हैं ।

3.2.4. कुछ शब्दार्थ :

रांपी = चमड़ा काटने - छीलने के लिए व्यवहृत लोहे का औजार । पतियाए हुए = विश्वास से भरे । नवैयत = विशिष्टता । चकत्ती = टुकड़ा । निबाहता हूँ = व्यवस्था करता हूँ । नाथ कर = पहन कर । बिसाती = बिसायती - सिर पर लेकर चूड़ी -बिन्दी बेचने वाला । आतियाँ - जातियाँ = आने - जाने वाली । टांके पड़ते = सूई गड़ती । त्तमकता हिस्सा = चमकदार भाग । तांत = चमड़े का

पतला धागा । कमजात = साधारण । पेट की आग = भूख, नोकरी छूटने का डर । शब्द मिल चुके = भाषा से परिचित हैं । अक्षरों के आगे अंधे = जानबूझ कर उपेक्षा करते हैं ।

3.2.5. अभ्यास प्रश्न

व्याख्या के लिए अंश :

i) बाबूजी ! सच कहूँ ..... मेरी निगाह में .....
मरम्मत के लिए खड़ा है ।

ii) यहाँ तरह -तरह के जूते .....
और आदमी की अलग-अलग 'नवैयत'' बतलाते हैं ।

iii) चोट जब देशे पर पड़ती है .....
और अंगुली में गड़ती है ।

iv) लगता है कि चमड़े की शराफत के पीछे .....
पेट से वाट करता है ।

v) कुछ हैं जो आवारो के आगे अंधे हैं .....
वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं

दीर्घमूलक प्रश्न :

क) 'मोचीराम' कविता का व्यंग्यार्थ स्पष्ट कीजिए ।

ख) 'मोचीराम' की प्रगतिवादी कविता के रूप में समीक्षा कीजिए ।

ग) 'मोचीराम' की भाषा शैली की विशेषता पर प्रकाश डालिए ।

घ) धूमिल की रचनात्मकता में 'मोचीराम' का महत्व बताइए ।

संक्षिप्त उत्तरमूलक प्रश्न :

i) 'मोचीराम' के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिये ।

ii) 'मोचीराम' की भाषा की समीक्षा कीजिए ।

iii) 'मोचीराम' के भाव वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए ।

iv) 'मोचीराम' की व्यंग्य शैली पर प्रकश डालिए ।

v) 'मोचीराम' में कवि की संवेदना पर प्रकाश डालिए ।

अति लघूत्तरी प्रश्न :

vi) जैसे 'टेलीफून' के खंभे पर

कोई .... फंसी है ।

निम्न में से खाली स्थान पर उचित शब्द भरिये

क) मछली ख) पतंग

ग) चिड़िया घ) इनमें कोई नहीं

vii) धूमिल किस धारा के कवि हैं ?

उचित शब्द लिखिए :

क) प्रगतिवादी ख) रोमांटिक चेतना

ग) छायावादी घ) इनमें कोई नहीं

viii)बनिया या बिसायती का रोब कैसे है ?

उचित शब्द लिखिये :

क) हिटलर का नाती ख) गांधी का नाती

ग) पिचका हुआ घ) इनमें कोई नहीं

ix) मोचीराम के पास क्या आते हैं ? उचित वाक्य चुनिये :

क) तरह-तरह के आदमी ख) जानवर

ग) तरह -तरह के जूते घ) इनमें कोई नहीं

3.2.6 सहायक ग्रंथ :

1. साठोत्तरी हिंदी कविता की वस्तुचेतना - बादाम सिंह रावत,
हिंदी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

2. समकालीन कविता का परिप्रेक्ष - मदन गुलाटी, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली

3. आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण - रमेशकुन्तल मेघ, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली

4. नयी कविता का मूल्यांकन - भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली

5. समकालीन बोध और धूमिल का काव्य - हुकुमचंद राजपाल :
कोणार्क प्रकाशन, नई दिल्ली

6. हिंदी कविता : संवेदना और दृष्टि - हरदयाल , नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली ।

मोचीराम

(कविता)

रांपी से उठी हुई आँखों से मुझे
क्षण-भर टटोला
और फिर
जैसे पतियाते हुए स्वर में
यह हँसते हुए बोला -
बाबूजी ! सच कहूँ - मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है

और असल बात तो यह है
कि वह चाहे जो है
जैसा है, जहाँ कहीं है
आजकल
कोई आदमी जूते की नाप से
बाहर नहीं है
फिर भी मुझे ख्याल रहता है
कि पेशेवर हाथों और फटे जूतों के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिसपर टाँके पड़ते हैं,
जो जूते से झाँकती हुई अंगुली की चोट छाती पर

हथौड़े की तरह सहता है
यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं
और आदमी की अलग-अलग नवैयत
बतलाते हैं
सबकी अपनी-अपनी शैली है
मसलन एक जूता है :
जूता क्या है - चकतियों की थैली है
इसे एक चेहरा पहनता है
जिसे चेचक ने चुग लिया है
उस पर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है
जैसे 'टेलीफून' के खम्भे पर
कोई पतंग फँसी है
और खड़खड़ा रही है
'बाबूजी ! इस पर पैसा
क्यों फूँकते हो ?'
मैं कहना चाहता हूँ
मगर मेरी आवाज लड़खड़ा रही है
मैं महसूस करता हूँ - भीतर से
एक आवाज आती है - कैसे आदमी हो
अपनी जाति पर थूकते हो ।
आप यकीन करें उस समय
मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ
और पेशे में पड़े हुए आदमी को
बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ

एक जूता और है जिससे पैर को
नाँघकर एक आदमी निकालता है
सैर को
न यह अक्लमन्द है

न वक्त का पाबन्द है
उसकी आँखों में लालच है
हाथों में घड़ी है
उसे कहीं जाना नहीं है
मगर चेहरे पर
बड़ी हड़बड़ी है
वह कोई बनिया है
या बिसाती है
मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है
'इशे बाँद्धों, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो
धिश्शाा दो, आइशा चमकाओ, जुते को ऐना बनाओ
..... ओफ् ! बड़ी गर्मी है' रुमाल से हवा
करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है
सड़क पर अतियों-जातियों को
बानर की तरह घूरता है
गरज यह कि घण्टे -भर खटवाता है
मगर नामां देते वक्त
साफ नट जाता है
'शरीफों को लुठते हो' यह गुर्राता है
और कुछ सिक्के फेंककर
आगे बढ़ जाता है
अचानक चिहुककर सड़क से उछलता है
और पटरी पर चढ़ जाता है
चोट जब पेशे पर पड़ती है
तो कही-न-कहीं एक चोर कील
दबी रह जाती है
जो मौका पाकर उभरती है
और अंगुली में गड़ती है
मगर इसका मतलब यह नहीं है

कि मुझे कोई गलफहमी है
मुझे हर वक्त यह खयाल रहता है कि जूते
और पेशे के बीच
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है
जिस पर टाँके पड़ते हैं
जो जूते से झाँकती हुई अंगुली की चोट
छाती पर
हथौड़े की तरह सहता है
और बाबूजी ! असल बात तो यह है कि जिन्दा रहने के पीछे
अगर सही तर्क नहीं है
तो रामनामी बेचकर कमाने में
दलाली करके रोजी कमाने में
कोई फर्क नहीं है
और यही वह जगह है जहाँ पर आदमी
अपने पेशे से छूटकर
भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है
सभी लोगों की तरह
भाषा उसे काटती है
मौसम सताता है
अब आप इस बसन्त को ही लो
यह दिन को ताँत की तरह तानता है
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हजारों सुखतल्ले
धूप में, सीझने के लिए
लटकाता है

सच कहता हूँ - उस समय
राँपी की मूठ को हाथ में संभालना
मुश्किल हो जाता है
हाथ कहीं जाता है
मन किसी झुँझलाये हुए बच्चे-सा

काम पर आने से बार-बार इनकार करता है
लगता है कि चमड़े की शराफत के पीछे
कोई जंगल है जो आदमी पर
पेड़ से वार करता है
औरी यह चौंकने की नहीं, सोचने की बारत है
मगर जो जिन्दगी को किताब से नापता है
जो असलियत और अनुभव के बीच
खून के किसी कमजात मौके पर कायर है
बह बड़ी आसानी से कह सकता है
कि यार ! तू मोची नहीं, शायर है
असल में वह एक दिलचस्प गलतफहमी का
शिकार है
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है
और भाषा पर
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है
जबकि असलियत यह है कि आग
सबको जलाती है। सच्चाई
सबसे होकर गुजरती है
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अन्धे हैं
ये हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं
और पेट की आग से डरते हैं
जबकि मैं जानता हूँ कि इनकार से भरी हुई एक चीख
और एक समझदार चुप
दोनों का मतलब एक है-
भविष्य गढ़ने में ‘चुप’ और ‘चीख’
अपनी -अपनी जगह एक ही किस्म से
अपना-अपना फर्ज अदा करते हैं

***